❀ भूमिका ❀

यह शङ्कर-विजय धर्ममूलक नाटक है, अतः इसको धर्म-पुस्तक भी कहसकते हैं, धर्मविषय में सम्मदायभेद सदा से चला आता है, इसकारण इस के साथ सब सम्मदायवालों की पूरी २ सहानुभूति नहीं होगी, इसबातको जानते हैं। तथापि हम हिन्दूशास्त्र के दास हैं, अथवा योगसिद्ध त्रिकालज्ञ महात्मा पुरुषों के वाक्य पर अटल विश्वास रखना ही हमारा धर्म है, इस के प्रतिकूल अपना मतामत प्रकाश करने को हम अनुचित समझते हैं।

इस पुस्तक में ऐसी कितनी ही घटना हैं कि-जिनपर आजकल के अनेकों नवशिक्षितों का तो कभी विश्वास होही नहीं सकता, कदाचित् वह उलटा उपहास करेंगे। परन्तु यहाँ कर्त्तव्य के अनुरोध से कहना पडता है कि-यह पुस्तक ऐसे पाठकों के लिये नहीं लिखागया है; किन्तु जो वास्तविक हिन्दू हैं,जिनके रोम २ में विश्वास भराहुआ है,उन के समीप हमारा सविनय निवेदन है कि-वह ज्ञानमार्ग की चरमसीमा को पहुँचे हुए-वेदान्तसिद्ध-अद्वैतवादी-साधक चूड़ामणि भगवान् शङ्कराचार्य जी के इस संक्षिप्त जीवन चरित को जरा भक्ति के साथ पढें। अधिक क्या कहैं-जो घोर नास्तिकता और बौद्ध आदि वेदविरोधी धर्मों से सनातन वैदिक धर्म की रक्षा करनेके लिये साक्षात् त्रिशूलधारी-शिवजी-शङ्कराचार्य रूप से मृत्युलोक में अवतीर्ण हुए थे, जिन के अमानुषिक ईश्वरीय बल ने एकदिन धर्महीन -अधोगत-भारत को नया जन्म दिया था। जिनके अलौकिक संन्यास अखण्डनीय युक्तियें-सारभरे उपदेश और अद्भुत कार्यकलापों से एकदिन सुदूर हिमालय से कन्याकुमारी पर्यन्त सकल धर्ममण्डल में कोलाहल मचगया था। जिन के, अनन्त ऋद्धि की शक्तिमय मस्तिष्क से सैंकडों धर्मग्रन्थ निकल

कर अबभी हिन्दूपन की रक्षा करतेहुए जगत् भर में हिन्दुओं के मुखको उज्ज्वल कररहे हैं, ऐसे महापुरुष के जीवनचरित्त की आलोचना करने के लिये किस विश्वासी हिन्दूकी वासना वलवती नहीं होगी ? । इसकारण मन में साहस होता है कि- पुस्तक रचना भौंडी होनेपर भी पाठक विरक्त नहीं होंगे । महात्माओं के चरित्त की आलोचना करने में औरों को तो क्या-परन्तु लेखक कोभी बड़ा सुख मिलता है, ऐसे विश्वास से ही आज इस पश्चिमी शिक्षा के अभिमानी हिन्दूसमाज के सामने ऐसे गम्भीर-भावभरे अतिकठिन विषय में हस्तक्षेप करने का साहस किया है। इस जगत् में यशका मिलना दैवाधीन है, अतः यशकी ओर ध्यान देकर किसी श्रेष्ठ विषयकी आलोचना से हाथ खैंचलेना युक्तियुक्त नहीं है ।

इस पुस्तक की ऐतिहासिक भित्ति नवीनशिक्षाकी दृष्टिसे वडी अशक्त है अथवा यह कहना ही वृथा है, क्योंकि-ऐसे महान् जीवन के सव स्थलों में सामञ्जस्य वनाये रखना मनुष्य की शक्ति के वाहर है । सदानन्द-आनन्दगिरि-और विद्यारण्य (माधवाचार्य) इन तीनों ने, 'श्रीशङ्कराचार्य जी के जीवन चरित्ररूप तीन ग्रन्थ लिखे हैं, इन में आनन्दगिरि का गद्यरूप ग्रन्थ वहुत वडा है और उसके देखने का हमको अवसर भी नहीं मिला, शेप दो पुस्तक देखने में आये, इन दोनों के लेखों में भी परस्पर वहुत भेद है, यहाँतक कि-श्रीशङ्कराचार्य जी का जन्म- निवासस्थान और माता पिता का नाम भी जुदा २ ही लिखा है, जो कुछ हो, परन्तु ऐसी वातों में मतभेद होनेपर भी उनके जीवन की सारभूत प्रधान २ आवश्यकीय वातें दोनों पुस्तकों में समानभाव से वर्णित हैं, इनही दोनों पुस्तकों के आधारपर तथा व० पा० किर्लोस्कर की रचना का सहारा लेकर इसपुस्तक को यथाशक्ति पाठकों का रुचिकर वनाया है । यद्यपि नाटकमें गद्य और पद्य दोनों

ही का होना उचित है, तथा श्रीशङ्कराचार्य जी से अलौकिक व्यक्तियों के मुख से हिन्दीमें तानटप्पे गवाना मखमल में टाट की साँट की समान कदापि पाठकों को रुचिकर नहीं होसकता, अतएव पद्यों के समावेश की इच्छा होनेपर भी इस विषय की यथोचित पूर्ति से पुस्तक वञ्चित ही रही है, हाँ अन्यपात्रों के लिये कहीं २ पद्यका प्रवेश भी किया गया है इसपुस्तक में श्रीशङ्कराचार्य जी और मण्डन मिश्रके शास्त्रार्थ में जो श्लोक आये हैं वह उनके ही मुख के कहेहुए हैं, ऐसा प्राचीन पण्डितों का कथन है, क्योंकि उन के जो अन्य संस्कृत ग्रन्थ हैं उन में भी यह श्लोक ऐसी ही आनुपूर्वी से लिखे हैं इसकारण हमने भी इस नाटकमें वह श्लोक ज्योंके त्यों लिखकर सरलताके लिये तहाँही नीचे भाषानुवाद लिखदियाहै

आजकल हमारे हिन्दीपाठकों में से अधिकतर महाशयों की रुचिका प्रवाह नाटक उपन्यासों की ओरको झुकने लगा है और केवल शृङ्गार-रस-प्रधान कलुषित नाटक उपन्यासों के पढ़ने से मनुष्य के धार्मिक जीवन में बड़ी वाधा पड़ती है, क्योंकि प्रवृत्ति का और स्वार्थ का प्रवाह तो सवही योनियों में है परन्तु निवृत्ति और परोपकार का उचित साधन इस मानवयोनि में ही जुटता है, अतएव मनुष्यता को सार्थक करने वाले निवृत्तिमार्ग और परोपकारकी ओरको झुकनेके निमित्त हिन्दीभाषा में शास्त्रीय तत्त्वोंसे गुथेहुए सच्चे ऐतिहासिक नाटक उपन्यासों की आवश्यकता है, अतएव मेरा यह धर्मजीवनमय सङ्कलन धार्मिक भारतवासियों को रुचेगा, ऐसी आशा है, न जाने इस विषयमें मैं कहाँतक कृतकार्य होऊँगा।

धार्मिकों का प्रेमाभिलाषी—

(ऋ०कु०) रामस्वरूप शर्म्मा गौड़

मुरादाबाद.

समर्पणपत्र

सनातन-हिन्दूधर्मकी रक्षा के निमित्त-दत्तचित्त

प्रलोभनमय संसारमें रहकर भी

जो सदा

अध्यात्मविद्या में मग्न रहते हैं

जिनका दैनन्दिन उद्योग

अपनीप्रजाकी शुभचिन्ताके लियेही रहताहै।

उनही

दर्शनीयमूर्त्ति-हिन्दूकुलचूड़ामणि-क्षत्रियकुलकमलदिवाकर

वदरिकाश्रमान्तर्गत-टिहिरी भूपति

श्री १०८ मान् कीर्त्तिसाहजी देव बहादुरके

करकमल में

यह धर्मविषयक पुस्तक

परमभक्ति और श्रद्धा के साथ

प्राणों की गभीर कृतज्ञताका चिन्हस्वरूप

समर्पितहै

निवेदक-रचयिता।

नमः श्रीशंकराय.

* शङ्कर-विजय *

(भगवान् शङ्कराचार्यजी की मर्त्यलीला)

(धर्ममूलक-नाटक)

प्रस्तावना

पहिले सब संगीतकार आकर एक साथ समयानुसार राग में शिवजी की--
प्रार्थना करते हैं।

जय उमारमन ! महेश ! शमन-कलेश ! वन्दितसकलजन ! ।
जय सकल-कलिमलहरन ! तारनतरन ! शिव ! कल्यानघन !
जय स्वेतअङ्ग ! भुजङ्गभूपन ! शीस गङ्ग लसैं जटन ।
जय अलख!आदि!अनूप !शान्तिस्वरूप ! शिव ! करुणायतन
जय अलख ! अविनाशी ! अगोचर ! शिव ! चराचरनायक !
जय प्रणतहित ! नित-शान्तचित ! सुरईश ! सन्तसहायक ! ॥
जय अभय-वर-कल्यानकर ! वरवरन ! मङ्गलदायक ! ।
जय चन्द्रभाल ! कृपाल ! जय दुखहरन ! सुख उपजायक !

तदनन्तर अञ्जुलि में फूल लिये आशीर्वाद पढ़ताहुआ
सूत्रधार परदे के बाहर आता है।

शुभग चन्द्रामाथे, प्रलयकर पावक नयन में ।
उमा है अर्द्धाङ्गी, दुसह विष निशदिन गुगल में ॥
करैं जिनकी आज्ञा, जगत् के लय उत्पति थिती ।
तुम्हहिं सो नितदेवैं, अमित सुख सम्पति पशुपती ॥

सूत्रधार—आहा ! सहज ही क्षणभर में जगत् की उत्पत्ति

पालन और प्रलय करनेवाले परमेश्वर सुख सम्पदा देकर तुम सबों के अज्ञान का नाश करैं (ऐसा कहकर अञ्जुलि में के फूलोंको उछालता है) अहो! प्रवीण सभ्य महाशयो ! गुणिगणमान्य-पण्डित मुकुटमणि-वाणीप्राणनाथ-चन्द्रचूड़च-रणचञ्चरीक परम गुणोंका सन्मान करनेवाली आपकी कीर्त्ति मुझको, दर्शनमात्र से गात्रको पवित्र करनेवाली इस सज्जनसभा में खैंचलाई है, मेरे मनमें तरङ्ग की उमङ्ग उठती है कि–मैं आपके सन्मुख कोई अभिनय करके दिखाऊँ आशा है आप उत्साह बढ़ानेवाले आशीर्वाद के साथ आज्ञा देंगे।

इतने ही में विचित्रवेषधारी विदूषक आगया

विदूपक–(आपही आप) क्याकरूँ ? कलजो सुनाथा वह ठीकही है, इस संसार में संकटही सङ्कट है यदि निरन्तर ऐसे ही संकट आतेरहे तो यार संसार सेही जातेरहे। (उचककर) वाह ! अच्छी मूर्त्ति है, अरे ! कौनहरे ! शिर में गाड़ीका पहिया साले डाढी सम्हाले और गले में मोटा सांपडाले जलोदरसी तोंदपर हाथ फेरता मरघट का भूतसा बातैं बघाररहा है ?।

सूत्रधार–यह क्या चमत्कार है ! ऐसा अट्टसट्ट बोलनेवाला यह न जाने कौन बुद्धिका भण्डार है ! बड़े उत्साह के साथ पतिके घर जानेवाली नवीना तरुणी का मार्ग काटनेवाले बिलाव की समान इसने अपशकुन किया है, अब मैं क्या उपाय करूँ ? ।

विदूषक–अरे ! जागते में ऐसा क्यों बर्रारहा है, मेरे प्रश्न का उत्तर दे,नहीं तो कुत्ते को देखकर मुख छिपानेवाले सिंह की समान भागकर छूटजा, ऐसी बातैं क्यों बनारहा है ? ।

सूत्रधार -अच्छे संकट में फँसे ! बलिहारी हूँ इस बोलने की चातुरी के और धन्यवाद है ऐसी बुद्धि को हाँ ' बहुरत्ना वसुन्धरा, यह बडों की कहावत बहुत ही ठीक है । हे भगवन् !

तुम्हारी लीला अपार है। अरे बाबा! बतातो सही अचानक आकर मेरे कार्य में विघ्न डालने वाला तू कौन है?।

विदूषक-क्या अभी कौन है यहभी न समझे? अरे गड़बड़नाथ? तेरी इन असम्बद्ध बातोंकों को सुनते २ मेरी आँखों की पुतलिगें बैठीजाती है, अच्छा तो मैं इस सभाका वकील हूँ, बता क्या है?।

सूत्रधार-वाह वाह! तो क्या सभासद् ऐसे बुद्धिसागर वकील के द्वारा ही मुझको नाटक खेलने की आज्ञा देंगे? तबतो मेरा भाग्यही उदय हुआ!।

विदूषक-अच्छा! अपना भाग्य न फोड़िये,मैंने थोड़ासा हास्य विनोद किया था; जाने दीजिये। अब आपको यहां जो कुछ करना है उसके लिये इन सभासदों की आज्ञा है परन्तु पहिले यहतो कहिये कि होगा क्या?

सूत्रधार-अरे बाबा! यदि पहिलेही से ऐसे होश में आकर बोलता तो इतनी उलझन न पड़ती, घड़ीभर के लिये अपनी जबान को लगाम दे तो मैं सब कहता हूँ।

विदूषक-अच्छा लगाम लगाली कहो (दोनों हाथों से मुखको दबाएडालता है)

सूत्रधार-अरे! ऐसा क्यों करता है, क्या श्वास बन्द करके मरता है? कहीं प्राण न निकलजायँ! और हम सब देखते रहजायँ।

विदूषक-वाह वाह! तुमभीयार दुमुहे हो, कभी कुछ और कभी कुछ कहरहे हो? और मुझे कष्ट देरहे हो, कहिये शीघ्र कहिये। तुमको जो कुछ करना है उसमें तुम्हारी इस लबड़धौंधौं और हाहा हूहू से काम नहीं चलसकता; देखो यह सभासद् उकतारहेहैं।

सूत्रधार–ठीक बहुत ठीक, लीजिये हमारे पण्डितजीने धर्म-शास्त्र के अनुसार, आजकल के लोगों को रुचनेवाला "शङ्कर-विजय" नामक एक नया नाटक बनाया है, मैं उसीका अभिनय करके दिखाऊँगा, जिसमें शृङ्गार, वीर, भक्ति, हास्य आदि रसोंका अच्छा जमाव और अज्ञान में डूबतेहुए भारत वर्षको ज्ञानोपदेश देकर चारों वर्णाश्रमों के धर्मको दृढ़ता से स्थापित करनेवाले भगवान् शङ्करस्वामी की कथाका वर्णन है

विदूषक–अच्छा यह तो रहनेदो, यदि पहिले फड़कती हुई दो लावनी सुनाओ तो बस मेरी जेबमें जो कुछ होगा वह सब तुमही इनाम में पाओगे (जेबमें हाथडालकर एक झिंझीकौड़ी निकालता है) ।

सूत्रधार–अरे ! तू मुझसे गानेको कहता है, परन्तु यह अवसर नहीं है, देख वह सङ्गीतविशारद नारदजी हरिगुण गाते मनमें हर्षाते आरहे हैं, उसको सुनकर हम दोनों अपना जीवन सफल करें (ऐसा कहकर दोनोंजाते हैं)

इति प्रस्तावना ।

प्रथम–अङ्क ।

प्रथम दृश्य–मर्त्यलोक ।

(माथेपर तिलक दिये हाथ में वीणा लिये हरिगुण गाते नारदजी आतेहैं)

जय जय जग–जनक देव शङ्कर अविनाशी ।
महा मोह-तिमिर-भानु, ईश सर्व-शक्तिमान् ॥
अखिलेश्वर अपरिमान, शङ्कर स्वप्रकाशी ॥
जाकी महिमा अपार, गावत नित मति उदार ।
निराकार निर्विकार, निर्गुण गुणराशी ॥
अद्वितीय अज अनूप, विपुल विविध भूतिभूप ।
सत्-चित्-आनन्दरूप, कठिन क्लेशनाशी ॥

सर्वग सर्वज्ञ सत्य, कर्त्ता कमनीय कृत्य ।
जाके सब भूत भृत्य, अवनिज आकाशी ॥
पूर्ण प्राज्ञ पूज्य पितृ परमात्मा प्रभु पवित्र ।
महा माननीय मित्र, उत्तम अनुशासी ॥
नित्य शुद्ध बुद्ध भक्त-करुणा कल्याण युक्त ।
प्रेमी पालन प्रयुक्त, दुर्जन तन त्रासी ॥
यह प्रताप ताप गेह, विनवत करजोर एह ।
दीजै निज सहज नेह, कीजै न निराशी ॥

नारदजी–आहा ! विधना की रचना क्या ही अपूर्व है, देखते ही मन मोहित होजाता है, कितनी लीला होती हैं और लीन होजाती हैं, जिनका कुछ पताही नहीं है, परन्तु सबके मूल एक भगवान् ही हैं, जिधर देखो उधर उनका ही पसाराहै, वह अनादि अनन्त हैं, कोई उनका पार नहीं पासकता, इसअसार संसार में केवल एक वही सार हैं । जीव जन्तु, पशुपक्षी, कीट पतङ्ग, वृक्ष लता आदि सब कृतज्ञता से उनका ही परिचय देरहे हैं, संसार में कुछ दिन क्रीड़ा करके आयु पूरी होते ही एक २ करके अन्त में सब उसी पद में लीन होजाते हैं । आहा ! कैसा गहन भाव है ! चराचर संसार से उनका भेद वा अभेद कुछ नहीं है, वह चैतन्य-स्वरूप अनन्त विश्व में व्यापकरूप से विराज रहे हैं । आहा ! यह कैसी अद्भुत बात है कि–वह जीवोंके हृदय में व्यापकर भी पृथक् रहते हैं । जब पवित्र हृदय में उनका ध्यानकरता हूं और उनके विचित्र कौशलमय कार्योंको विचारताहूँ तबही उन्मत्तसा होजाता हूँ, सुधबुध जाती रहती है । आहा ! उन परमप्रेमी के प्रेम में जिसका मन रँग जाता है वही आपे को भूलजाता है, उसीके हृदय से भेदाभेद दूरहोजाता है, वही

जगत्भर को अपना कुटुम्ब समझने लगता है, ऐसे - दुर्वासना और भेदभावको छोडकर सदा आनन्दमें मग्न रहनेवाले महात्मा धन्य हैं वही महापुरुष मोक्षके अधिकारी हैं। नहींतो जिन मूढों को धार्मिक पुरुष घृणा की दृष्टि से देखते हैं, जो सदा मिथ्याभाषण पापकर्मों में मग्न रहते हैं और प्रज्वलित अग्नि की समान नरहत्यारूप घोरपाप करते हैं, भूतल पर उन सा महापापी कोई नहीं है। ईश्वरका तथा भले बुरेका विचार करने की शक्ति होने से मनुष्य सबसे श्रेष्ठ हैं। जिनकी कृपा से मनुष्य ज्ञानरूप प्रकाशको पाकर चराचर विश्वको वश में करसकता है, परन्तु हा ! इस मनुष्य समाज की कैसी दुर्दशा देखरहा हूँ ! कितने कुलाङ्गार हृदय से कृतज्ञता को विसार उन जगत् पिताके नियमों को लाँघतेहुए स्वाभाविक घोर पाप कररहे हैं, कितने ही धर्मको छोड सत्य से मुखमोड, धीरता से असत्य की वीरता दिखारहे हैं ! हा ? सुखमय मृत्युलोक का यह परिणाम ! न जाने वह पहिला समय कहाँ चलागया ? वह पुण्यवान् तपोधन योगी ऋषि महात्मा वाल्मीकि आदि अब नहीं हैं, वह धर्मवीर सत्यप्राण महाराज हरिश्चन्द्र, श्रीराम, नल, धर्मपुत्र युधिष्ठिर आदि अब नहीं हैं, जोधर्मकी रक्षाकी अपेक्षा राजसिंहासन दास दासी औरकुटुम्बकोभी तुच्छ समझ कठोर क्लेशोंको सहते और वनों में संन्यासीके वेशमें रहते थे, अब पहिले की समान योग , तप, आदिका चमत्कार दिखानेवाला कोई नहींहै।हाय!सनातनधर्म की कैसी दुर्दशा होरहीहै कि - जिसको देखते हुए छाती दहली जाती है । बौद्ध, जैन, क्षपणक आदि नानाप्रकार के विधर्मप्रवाह में सत्यधर्म बहाजाता है, हाय ! अब क्या उपाय होगा दिनदिन विश्वास घटाजाताहै, दुर्बुद्धि मनुष्य कुतर्कोंमें पडकर

सीमा से बाहर होगये, परम पवित्र सनातधर्म को त्याग वि-धर्मी होनेलगे, इस घोर कलियुग में धर्मकर्म तो रसातल को धसा चलाजाता है, अब विपत्ति जीवों के शिरपर आपहुँची है, रक्षा का कोई ढंग नहीं है, हा ! न जाने क्या होना है ? (खिन्नहो कुछ देर टहलकर) अब क्या करना चाहिये (विचारकर) एक यही युक्ति समझ में आती है कि-सकल जीवहित-कारी लोकपितामह ब्रह्माजी के पास जाऊं, मेरा अन्तरात्मा कहता है कि-तहां अवश्यही इसका कोई उपाय बनसकेगा। (हाथ जोड़हुए ऊपरको दृष्टि करके) हे अन्तर्यामिन् ! हे देव! तुम्हारे ही अनुग्रह से मेरा मनोरथ पूर्ण होगा।

पद-लिख्यो कहा भाग मनुज के हाथ !

भीषण पाप-प्रवाह थाह नहिं, वार न पार लखाय।
तरहिं पातकी जन, कोई ऐसो, दीसत नाहिं उपाय॥
भवभय-हरण शरण हे माधव, कीजै वेग सहाय।
चढि तुव चरणकमल दृढ नौका, को न पार ह्वैजाय॥

श्रीमन्नारायण ! नारायण ! नारायण ! श्रीमन्नारायण।२।

इसप्रकार हरिगुण गाते नारदजी जाते हैं।

—०—

द्वितीयदृश्य—ब्रह्मलोक।

(ध्यान में मग्न ब्रह्माजीका विराजना और मौनधारे नारदजी का प्रवेश)

नारदजी-(मनही मनमें) यह क्या ! त्रिलोकी के विधाता ऐसे गम्भीर ध्यान में क्यों मग्न हैं!मानो बाहरकाज्ञान ही नहीं है

ब्रह्माजी-(लम्बी श्वांस छोड़तेहुए आप ही आप) आः मनुष्यों का यह कैसा दुर्दैव देखरहाहूं ! अब क्या उपाय होगा ! क्या अन्त में मेरी सृष्टिकी दुर्दशाही होगी ? लीला-मय भगवन् ! तुम्हारी लीला का पारकोई नहीं पासकता !

(नेत्र खोलतेही अचानक नारदजीको देखकर) तात!आओ मैंने आज तुम्हे बहुत दिनोंमें देखा है ? बेटा ! तुमतो सदा आनन्दमग्न रहते थे, आज तुम्हारे मुखपर खिन्नता क्यों दीख रही है ? मर्त्यलोक में सब कुशल तो है ? अनहोनी बात तो नहीं हुई ? तुम्हारे मुखको देखने से मुझे सन्देह होगया ।

नारद–हेपितः ! हे अन्तर्यामिन् ! प्रभो ! आप मुझ से क्या बूझते हैं? आपसे कौन बात छिपी है ?

ब्रह्माजी–बेटा ! तथापि जोकुछ जानते हो कहो

नारद- अन्तर्यामिन् ! प्रभो ! क्या कहूँ ! अब मर्त्यलोककी कुशल नहीं, है मनुष्योंकी दुर्गति होरही है,ज्ञान अन्तर्धान हो गया, दुर्लभ मनुष्यजन्मको पाकरभी सब पशुसमान व्यवहार कररहे हैं विवेकका पता नहीं, धर्मचर्चा की तो बातही क्या . दिन दिन कुतर्क बढते जातेहैं, श्रद्धाका नाम नहीं, विश्वास का काम नहीं,सब नास्तिक होगये, जोकुछ बचा वहभी अधर्मियों से लपा है कुशल नहीं है, कोई स्वेच्छाचार को ही सर्वस्व जानते हैं, ईश्वर का होनामिथ्या मानते हैं, कोई दिखावे के लिये कर्मकाण्डमें रत हैं, कोई नाशवान् धन एश्वर्य में ही उन्मत्त हैं,दीन दरिद्र पीड़ा पाते हैं,हाहाखाते हैं, कोई जन्मान्तर को न मानकर स्वार्थ साधने के लिये ही सदा पाप में मग्न रहते हैं। ऐसे अनेकों प्रकार के सारहीन लक्ष्यहीन विधर्मप्रवाह में सत्यधर्म बहाजाताहै, हाय ! सनातन वैदिक धर्म की ऐसी दुर्दशा होरही है, अनेकों महापापी नारकी दुष्ट पुरुष, प्रकाशमय जीवित धर्मको त्यागकर असार विधर्म की शाखाओं का आश्रय कररहे हैं। हे देव ! अब इस दासकी यही विनय है कि–शीघ्रही किसी उपाय से अपनी सृष्टिकी रक्षा करिये। अब भूमि पापके भारको अधिक नहीं सहार

सक्ती, देव! अब मुझ से जीवोंकी दुर्गति नहीं देखी जाती है
हे मुक्तिदाता!शीघ्रही मुक्ति का उपाय करिये नहींतो वसुधा
रसातल को धसा चाहती है।

ब्रह्माजी—बेटा! मैं जानता हूँ कि—दूसरों के दुःख को देख
तुम्हारा मन मुरझाजाता है, मैभी समाधि में मर्त्यलोक की
दुर्दशा देख व्याकुल होरहा हूँ अभीतक कोई उपाय
निश्चित नहीं करसका हूँ परन्तु आज इसीका उपाय विचारने
के लिये इन्द्रदेवके यहां सभा होगी मैं वहीं जाता हूँ।

(एक को ब्रह्माजी और दूसरी ओरको नारदजी जाते हैं)

तृतीय दृश्य देवलोकमें इन्द्रसभा।

(अष्ट दिक्पाल आदि देवता मलिनमुख हुए आकर बैठते हैं)

कुबेर—मित्रो! इस सुधर्मा सभामें हम सब तो नियत समय
पर आगये, परन्तु महाराज अभीतक न जाने किसकारण
नहीं आये?

यम—मैंने इसका समाचार मँगालिया है,महाराज इन्द्र प्रस्तुत
कार्यका विचार करनेके लिये गुरु बृहस्पतिजीके साथ नन्दन
भवन के गुप्तमंदिर में बैठे सम्मति कररहे हैं, इसकारण ही स-
वारी आनेमें विलम्ब हुआ होगा।

अग्नि-हाँ यहतो ठीकहै, परन्तु सब देवता बैठे २ देवता
बाट देखरहे हैं, इतना कहलाभेजने में क्या कुछ हानिहै?।

वरुण—हानिकी तो न कहिये! महाराज गुप्तमंदिरमें बृहस्पति
जीके साथ सम्मति कररहे हैं, इसदशामें जहाँ जानेको पवन
कीभी छाती नहीं है तहाँ दूसरा कौन जाकर समाचार
पहुँचावेगा?

सूर्य—यह ठीक है, परन्तु इतनी अधिक झंझट करने की
तुम्हें कौन आवश्यकता है, दो घडी बाट ही देख लोगे तो
क्या हानि है?

(इतने ही में चन्द्रमा आते हैं)

कुबेर-ठीक ठीक, यह निशाकर आरहे हैं, इनको पूरा२ वृत्तान्त मालूम होगा, कहिये निशानाथ! महाराज इन्द्रदेव के विषयका कुछ समाचार आपने सुना है क्या?

चन्द्र-हां यह सुना है कि-इस समय हम सबोंपर जो संकट है उसके विषय में क्या करना चाहिये, यह विचार बृहस्पतिजी के साथ एकान्त में होरहाथा, इतने ही में ब्रह्माजी भी आगये, यह बात मैंने अभी सुलक्षण द्वारपाल से सुनी थी, वैसे ही इधरको चला आरहा हूँ।

यम-अरे! वह देखो ब्रह्माजी का विमानभी आरहा है, अब तिलभर भी दुःख न मानो, सकल ही कष्टों से छुटकारा हुआ जानो।

(इतने ही में परदे के भीतर से शब्द आताहै)

[सकलदेवतासार्वभौमश्चण्डदोर्दण्डबलखण्डितराक्षसश्रीः, विलापभरितधाराधरकुहरो वज्रधरः, चतुर्मुखेन सह गच्छतीति सर्वैराचारः कर्त्तव्यः शनैः शनैश्चलतु महाराजः]

दूत-(दौड़ताहुआ आकर महाराज आगये।

[सब उठकर खडे होते हैं]

तदनन्तर इन्द्रदेव और ब्रह्माजी आकर आसनपर बैठते हैं और सब देवता क्रमसे प्रणाम करते हैं।

इन्द्र-बैठो देवताओ बैठो (सब अपने २ आसनपर बैठते हैं) मित्रो! तुम्हारे संकटको दूर करने के लियेही साक्षात् सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीने विचार किया है और आगेको जो कुछ करना चाहिये उसकी भी आज्ञादी है।

वरुण-देवनाथ! महापुरुषों का अवतार परोपकारके लियेही होता है, अतःब्रह्माजी हमारे निमित्त जो कुछ करें सो उचित ही है, परन्तु श्रीमहाराजने कौन उपाय करने की आज्ञादी है? उसके सुनने को सब देवता उत्कंठित होरहे हैं।

ब्रह्माजी-हे देवताओं ! तुम्हारे यह कुमलाएहुए कमलों की समान मुख मुझसे नहीं देखेजाते, और यह सङ्कट, कैलास पर पहुँच पार्वतापति महादेवजी को सुनाएबिना दूर नहीं होगा, इस लिये सब मिलकर इस उद्योग को करो, बस कार्य सिद्ध हुआही समझो ।

इन्द्र-परन्तु महाराज ! आप और विष्णुभगवान् भी हमारे साथ अवश्य होनेचाहियें, क्योंकि-बड़ों के आश्रय विना शिवजी के दरबार में शीघ्र सुनवाई होना कठिन है।

ब्रह्माजी-हाँ ! मैंतो चलूँगाही, उन भोलानाथ का दर्शन करे विना मुझे बहुत दिनहोगये हैं, विष्णुभगवान् से प्रार्थना करोगे तो वह भी अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे ।

इन्द्र-मित्रों ! अब विलम्ब क्या है ? सब मिलकर श्री-विष्णुभगवान् को साथ लेतेहुए कैलास को चलें ।

सब-हाँ हम तयार हैं (सबजाते हैं)

चतुर्थदृश्य-कैलास पर्वत.

पार्वती, गणेश और स्वामिकार्तिकेय सहित आसनपर बैठेहुए महादेवजी का दर्शन ।

पार्वती-हे प्राणवल्लभ ! आप मुझसे और इन दोनों बालकों से प्रेमके साथ भाषण करते २ अचानक घबड़ाकर लंबे और गरम श्वास छोड़नेलगे यह देखकर मैं बड़ी व्याकुल होरही हूँ, उस त्रिपुरासुर की समान कोई दैत्यतो देवादिकों को कष्ट नहीं देरहा है ?

महादेवजी-हे प्रिये ! इस हृदय की बातको जानलेने की तेरी चातुरी को देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ । प्रिये ! किसी दैत्यका तो भय नहीं है, परन्तु कुछ समय के लिये मुझे मृत्युलोक में अवतार लेना पड़ेगा; क्योंकि-आजकल भूलोक में दुराचार बहुत बढ़गया है ।

पार्वती—अच्छा तो मुझेभी साथ लेचलिये, क्योंकि—आप जबर अवतार धारतेहैं,मेरे सहितही भूलोक को सिधारते हैं।

महा०—नहीं नहीं, इस अवतार में तुम्हारी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि—ज्ञानमार्ग की स्थापना के लिये मुझे संन्यासी बननापडेगा, उसमें स्त्री का क्या काम ?

पार्वती—ऐसा क्यों ? यह बात तो मैं नहीं जानती थी, क्या अब आप संन्यासी बनेंगे ? क्या जैसे अर्जुनने सुभद्रा को हरने के लिये संन्यासी का रूपबनाया था,तैसाही आप भी करेंगे ? तबतो मुझे अच्छा तमाशा देखने का अवसर मिलेगा।

महा०—तमाशे के ध्यान में न रहो, इस अवतार में बडा-भारी शास्त्रार्थ होगा, बडे २ कुतर्कियों को जीतना पडेगा और भूलोक में तुम्हारे प्रिय अद्वैतमार्ग की बहुत चर्चा होगी।

पार्वती—परन्तु भूलोक में ऐसा दुराचार करनेवाले कौनहैं

महा०—बताने की कौन आवश्यकता है, सब तुम्हे प्रत्यक्ष हुआजाता है, वह देखो ब्रह्माविष्णुको साथ लिये इन्द्रादि देवता आरहे हैं, उनके मुखसे सब सुनलोगी (सब देवता-आकर प्रणामकर खडेरहते हैं)

महा०—बैठो देवताओ बैठो, मित्र विष्णुजी ! ब्रह्माजी ! आप इधर आइये (सब देवता यथायोग्यस्थानपर बैठते हैं) कहिये विष्णुजी ! ब्रह्माजी ! आज इन सब देवताओं के साथ कैसे आनाहुआ ? ।

ब्रह्माजी—चन्द्रशेखर ! आप त्रिकालज्ञ हैं, सब के घट २ की जानते हैं।

महा०—अच्छा कहोतोसही, मेरे करने का कौनकाम है, यदि साध्य होगा तो अवश्य करूँगा।

इन्द्र–(आगेबढकर) हे भक्तभयभञ्जन ! करुणासागर ! आप रातदिन देवताओं के हितचिन्तन में मग्नरहते हैं, इस समय देवताओं के ऊपर संकट पडा है, भूलोक में बौद्ध बडे उन्मत्त होगये हैं, अनादि वेदमार्ग का तिरस्कार करते हैं, श्रौतकर्म नष्ट होचला, ब्राह्मण भी स्नान संध्या आदि षट्कर्मों को छोडकर उस मतमें ही जानेलगे, अधिक क्या कहैं,– सूर्य नारायण को नित्य एक भी अंजुलि न मिलने का समय आगया, आजकल के राजे भी उसी मतपर आरूढ़ होगये, बौद्धों में बड़े २ पण्डित होगये, संस्कृत में बड़े २ ग्रन्थ लिखकर वेदमार्ग का खंडन करते हैं ; बौद्ध कापालिक, दिगम्बर आदि अनेकों नास्तिकों के कारण वैदिक मार्गतो बन्दही होगया, अबभूलोकमें ज्ञान वैराग्यआदि की तो चार्चाही किसको सुहावेगी ? ऐसी दशा में यज्ञ याग आदि शान्तिक पौष्टिक कर्म बन्द होजानेसे इन अनाथ देवताओं का स्वर्गलोक में जीवन कैसे हो ! सब देवता विकल हो रहे हैं इस कारणही मिलकर आपके चरणकमलों की शरण आये हैं(ऐसाकह नमस्कार कर मौन होकर बैठते हैं)

महा०—इन्द्रदेव ! घबड़ाओ मत, नास्तिक बहुत बढ़चुके, अब शीघ्रही वह अपने कर्मोंका फल पावेंगे, मैंभी कितनेही दिनों से इस विचार में हूँ। यद्यपि, स्वामिकार्त्तिकेय, गणेश और पार्वती मुझे परमप्रिय हैं परन्तु ज्ञानमार्ग मुझको उनसे भी प्यारा है, उसका नाश करने वाले बौद्धों उद्धतपना अब मैं बहुत दिनों नहीं रहनेदूंगा, यदि अबही अवतार धार मैं ज्ञानमार्ग की स्थापना करनेलगूँ तो नहीं होसकेगी, क्योंकि इससमय सकल प्राणी कर्मभ्रष्ट होनेके कारण ज्ञानोपदेश के पात्र नहीं रहे हैं, इसलिये सब मार्गोंके मूल कर्ममार्ग की

स्थापना पहिले होनीचाहिये, इसलिये एक कामकरो।

इन्द्र- कहिये ? महाराज ! जो आज्ञा हो उसको पूरी करने के लिये यह सभी आपके दास तयार हैं।

महा०-देवेन्द्र ! तुम सुधन्वा नाम से बौद्धों के कुल में ही जन्मलो और नीति के साथ राज्य करने लगो तथा बौद्धों को जीतने के लिये जो आवै उसकी सहायता करके वेदनिन्दकों का नाशकरो।

इन्द्र-भगवन् ! आपकी आज्ञा तो शिरोधार्य है,परन्तु चिन्ता यह है कि-नीचकुल में कैसे जाऊँ ? जो वेदोंकी प्रत्यक्ष निन्दा करते हैं और ब्राह्मणोंसे वैरभावरखते हैं, उनके साथ तो क्षण २ समय बिताना कठिन होजायगा ?

महा०-इन्द्रदेव ! यह कैसी बात मन में लाते हो, भूमि के उद्धार के लिये विष्णु भगवान् ने क्या वराहावतार नहीं धारा था ? भाई बड़ाभारी परोपकारी कार्य साधने के लिये यदि नीचकामभी करना पड़े तो वह भूषणही होता है, तुम को कोई चिन्ता न करके मेरा वचन माननाही चाहिये। मत्स्यावतार धार वेदों का उद्धार कर जो यश भगवान् ने पाया था वही यश तुमभी पाओगे, क्योंकि-यह उद्योग भी वेदों के उद्धार के लिये ही है।

इन्द्र--बहुत अच्छा महाराज ! आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये यह दास निःशंक है।

महाराज ! बेटा स्वामिकार्त्तिकेय ! तुम भट्टपाद नामसे ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर सुधन्वा राजा की सहायता से बौद्धों को जीत कर्मकाण्डका प्रचार करो।

स्वामिकार्त्तिकेय--ऐसा कौन पुत्र होगा, जो पिता की आज्ञा न माने, यह बालक आज्ञाको शिरोधार्य करताहै।

महा०--हे देवनारायण ! हे चतुरानन ! तुमको भी इस

कार्य में सहायता करने के लिये अवतार धारना होगा ।

ब्रह्माजी--मैं भी शिवहीन स्थान मे रहते डरता हूँ ।

विष्णु--कहिये शंकर ! आपने मेरे विषय में क्या विचार किया है ?

महा०--हे चक्रपाणे ! आप शेषजी को साथ लेकर सङ्कर्षणरूपसे भट्टपादरूपधारी स्वामिकार्तिकेय की सहायताकरैं और हे ब्रह्माजी ! आप गृहस्थधर्म की रक्षाकरते हुए जीवों को मोक्षफल देने तथा देवताओं को संतुष्ट करनेके लिये ब्राह्मणकुल में अतिप्रसिद्ध मंडनमिश्र नामसे उत्पन्न होकर याग यज्ञादि कर्मकाण्ड के पक्षपाती बनो ।

ब्रह्मा और विष्णु--हम आपकी इच्छानुसार कार्यको स्वीकार करते हैं ।

महा०--और सब देवता अंशावतार से ब्राह्मणकुलों में उत्पन्न हो कर्ममार्ग का प्रचार करें ।

सब--हमसब श्रीमहाराज की आज्ञाका पालन करने को उद्यत हैं ।

इन्द्र--भगवन् ! यहतो कहिये कि- आप अवतार धारकर किस कुलको कृतार्थ करेंगे ।

महा०—पवित्र भारतवर्ष के केरलदेश में एक स्थान है जहाँ वैदिक सनातनधर्मावलम्बियों का निवास है, तहाँ आकाश लिङ्गनाम से प्रसिद्ध एकमूर्ति है, मैंने विचारकर स्थिरकर लिया है कि—उस मूर्त्तिमे मेरा पूर्ण अधिष्ठान होगा,तहाँ शिवभक्त पवित्र ब्राह्मणवंश की एक 'विशिष्टा' नामक स्त्री है कि—जो निरन्तर भक्तिमें भरकर मेरी पूजाकरतीहुई मुझसे सर्वश्रेष्ठ सन्तान मांगती थी, मैने तथास्तु कहकर उसको वचन देदिया है । और उस 'विशिष्टा'के पति शिवगुरु ब्राह्मणने भी प्राणपण से मेरी सेवा करी,यदि मैं ऐसे सेवकोंकी इच्छापूरी नहीं करूंगा

तो मुझेसबदोषदेंगे और फिर कोई मेरे शिवनामका स्मरण भी नहीं करेगा, अतःमैंने विचारा है कि-विशिष्टा और शिव गुरुको माता-पिता बनाकर भूलोक में मनुष्य नाट्यकरूंगा और शङ्कराचार्य नामसे प्रसिद्धहोऊंगा, तब वेदादि अपूल्य ग्रन्थों का उद्धार और भूलोक में फिरसे स्मृति, न्याय, धर्मशास्त्रका प्रचार होगा,लोगों के सकल खोटे संस्कार दूरहोकर पूर्ववत् योग, जप, तप आदि सनातनधर्म पर प्रेम होगा,चार्वाक और बौद्धमत विलीन होजायगा तात्पर्य यह है कि-मैं भारतकी सबप्रकारकी अशान्ति को दूरकरके ज्ञानमार्ग की स्थापना करूँगा, उपनिषद्, गीता और व्याससूत्रों पर भाष्यरचूंगा, अच्छा अब सबको अपने उद्योग में लगना चाहिये ।

सब०-जो आज्ञा श्रीमहाराज की (सबस्तुतिगातेहुएजातेहैं)

जय जय महेस अनादि शङ्कर भूतपति विश्वम्भर ।
जय पतितपावन दुखनसावन त्रिगुण--वपुधारन हर ॥
जय चन्द्रभाल कृपाल निजजन-पाल त्रिपुर--विनाशक
जय जयतु आनँद कंद शिवस्वच्छन्द ज्ञानप्रकाशक ॥

—०—

द्वितीय अङ्क.

प्रथम–दृश्य

मयूरपिच्छधारी दो बौद्ध पण्डित आते हैं ।

बौद्धकिशोर–अर्हद्भ्यो नमोनमः, अर्हद्भ्यो नमोनमः,आः भगवान् बौद्धाचार्यने हमारा कैसा उत्तम धर्म स्थापित किया है–नास्ति परलोकः, मृत्युरेव मोक्षः, ऋणंकृत्वा घृतंपिब, यह बौद्ध वचन कानोंको कैसा सुखदेते हैं, जिसमें परलोक की आशापर देहको क्लेशनहीं, मरनाही मोक्ष है, ऐसे सुन्दर वंश में जिन्होंने मुझे जन्म दिया है उन अर्हद्देव का उपकार मैं कभी

नहीं भूलूँगा (आगेको देखकर) अरे ! यह तो मित्र जैनेन्द्र-किशोर इधरकोही आरहे हैं, मित्र ! आइये आइये ।

जैनेन्द्रकिशोर—(आनन्द के साथ मिलकर) नमोनमः, कहो मित्र ! आनन्द तो हो ?

बौद्ध०—हाँ देहमात्र से आनन्द हैं ।

जैनेन्द्र०—भाई ऐसी सन्देहभरी बात से तुम्हारे परममित्र को खेदहोता है, कहो तो सही क्या हुआ ?

बौद्ध०—अरेभाई ! कौनबात सुनाऊँ, क्या कियाजाय ? अपना समयही उलटगया ।

जैनेन्द्र०—अरे ! यह भी आश्चर्यही है, क्योंकि—तुमसे धीर-पुरुष के मुखसे तो कभी ऐसे अक्षर निकले नहीं, यह तो कहो समय का उलटना कैसे समझा ?

बौद्ध०— 'राजा कालस्य कारणं,' 'यथा राजा तथा प्रजा' यह बात तुम नहीं जानते हो क्या ? अरे ! राजा का चित्त फिरतेही समयभी फिरजाता है ।

जैनेन्द्र०— मित्र ! यह क्या कहरहे हो, राजा सुधन्वा की बुद्धि उलटी होगई क्या ?

बौद्ध०—क्या कहूँ मित्र उस दुष्ट कातो नाम न लो, वहतो हमारे वंश में कुलांगार निकला, जिस समय इसके बापका मरण होकर इसको राज्याभिषेक हुआ था तब इसके बालक पने के बर्तावों को देखकरही मैंने कई मित्रों से कहा था कि यह कुल्हाड़ी का दंडा वंशका काल होगा ।

जैनेन्द्र०— अच्छा यहतो कहो वह ऐसा कौन काम करताहै ?

बौद्ध०— क्या कहूँ ! अपने परम्परागत धर्मपर उसकी कुछ भी श्रद्धा नहीं है, हमारे शत्रु ब्राह्मणों से मित्रता रखता है औरभी उसने एक ऐसा दुष्कर्म करडाला है कि—जिसको

सुननेही शरीरपर रोमांच खड़े होते हैं(ऊपर को देखकर) देव ! ऐसे दुष्टके नेत्र क्यों नहीं फोड़ देते ।

जैनेन्द्र०–मित्र!कहोतो सही राजा ने ऐसा कौन दुष्कर्म किया है?

बौद्ध०–आज शापहीन हुए राजमहल में एक ब्राह्मण से वेदपाठ करारहा है और उसको बहुतसी दक्षिणा देता है ।

जैनेन्द्र०–(कानोंपर हाथ रखकर) अर्हन्, अर्हन्,अर्हन् ऐसा घोर पाप, अरेदुष्ट ! इन आचरणों से क्या तू इस निष्कलंक राजसिंहासन पर टिकसकेगा ?

बौद्ध०–क्या कहूँ मित्र ! सब राजपरिवारभी इसी चिंता में है, ऐसे इष्टद्रोही पुरुषको कैसे सहैं, देखो इस बौद्धधर्म में कोई कष्टनहीं है परन्तु हमें इसके नीच आचरणोंके कारण रातदिन चिंता जलाती रहती है ।

जैनेन्द्र०–सोभाई सबको मिलकर राजाकी बुद्धि के भ्रमको दूर करनेका यत्न करना चाहिये ।

बौद्ध०–अरेभाई मैंरे२लोग ऐसीही सम्मति पाहिले दो चार बारहुई, परन्तु इस दुष्टराजा ने उन लोगोंको पकड़कर प्राणान्त दंड दिया ।

जैनेन्द्र०–अब कुछ भी उपाय नहीं देखकर यदि हम सब बैठे रहेंगे तबतो यह दुष्ट किसी समय हमारे मत का सर्वनाश करडालेगा, इस लिये कोई न कोई युक्ति करके इस काँटेको निकालही डालना चाहिये ।

बौद्ध०–ठीक है मैंने अपने एक शिष्यको कुछ भेद लेने के निमित्त राजमहल में भेजा है, यहाँ खड़ा उसीकी बाट देखरहाहूँ, देखो वह आकर क्या कहता है ।

इतनेही में शिष्य आता है ।

शिष्य–अर्हद्भ्यो नमोनमः, मैं श्रीचरणों की कृपा से

राजमहल में तो पहुँचगया, परन्तु गुरुजी की आज्ञानुसार कार्य करने का मुझको अवसर नहीं मिला और मैंने इस समय जो वात सुनी है वह अत्यन्तही कष्टदायक है ॥

बौद्ध०-उपासक ! कहो क्या सुना, इस समय तो जितने भी कष्टआवें थोड़ेही हैं।

शिष्य-एक भट्टपाद नामक ब्राह्मण हमारा नयाशत्रु उत्पन्न हुआ है, वह सकल शास्त्रों का पूरापण्डित है और उसका विचार सकल बौद्ध सिद्धान्तों का खंडन करने का है, चारों ओर यह वात फैलरही है, तथा ऐसा भी सुनने में आया है कि-उस ब्राह्मण का राजा से बहुत कुछ मेलबढ़गया है और वह दोतीनवार गुप्तरूप से आकर राजासे एकान्त में मिला है।

बौद्ध०-लो जैनेन्द्रकिशोर ! यह एक नईहुई (शिष्य से) अरे ! तो तू उस दुष्ट राजाका शिर क्यों न काटलाया, फिर जो होता हम देखलेते ।

शिष्य-मैं इसी घातमें गयाथा, देखपावेगा तो पहरेवाला नहीं जाने देगा इसभयसे शस्त्रको जामे में छिपालिया था, परन्तु उस नीचकी भृकुटि देखते ही मेरे हाथ पैर सटपटागये, शरीर काँपने लगा जीभ ऐंठसीगई और क्या कहूँ शस्त्र खिसककर नीचे गिरपड़ा, राजाने शस्त्रको गिरता हुआ देखतेही, अरे इसको पकड़ो, यह कौन मेरे प्राणलेने को आयाथा, इतना कहाकि मैं तहाँसे भागता हुआ आपके समीप कोही आयाहूँ ।

बौद्ध-हा मूर्ख ! सबवात विगाड़दी, और केवल वातही नहीं विगाड़ी किन्तु मेरे ऊपर भी, राजाका संदेह करदिया; क्योंकि राजाने तुझे मेरे साथ अनेकों वार देखा है, खैर जोकुछ हुआ, (जैनेन्द्रकिशोर से) मित्र ! इससमय

मेरे चित्तमें बड़ी व्याकुलता है अब मैं एक सम्मति करनेको जाताहूं, नमोनमः ।

जैनेन्द्र०-जाइये मुझेभी अत्यावश्यक काम है, मैंभी जाता हूं, नमोनमः (दोनों जाते हैं)

—o—

द्वितीय-दृश्य ।

(दो ब्राह्मण पंडित हाथमें हाथ पकड़कर बात करतेहुए आतेहैं)

प्रभाकर-कहिये पं० नीलकंठ जी आपने कल कहाथा कि-शीघ्रही तुमको एक शुभसमाचार सुनाऊंगा, बताइये वह कौनबात है मेरे मनमें सुननेके लिये बड़ी उत्कंठा होरहीहै।

नीलकंठ- हाँ सुनिये, पं० भट्टपाद नामक एक अवतारी पुरुष, इन बौद्धों का मद उतारने के लिये ब्राह्मणकुल में दीपकरूप उत्पन्न हुआ है, अब थोडेही दिनों में तुम सुन लोगे कि नगर के मन्दिरों में शिव और विष्णु की मूर्त्ति स्थापित होगई ।

प्रभा०-अरेभाई ! यहतो तुम्हारी आशाही है, यह तुमने किससे सुना है ? और वह अवतारी है इसका प्रमाण क्या

नील०-उसका सब वृत्तान्त सुनकर तुम ऐसा नहीं कहसकोगे ।

प्रभा०-होतो सब सुनाइये न,जिसको स्मरण करता हुआ आनन्द से दिन बिताऊँ ।

नील०-अरेभाई उस पंडितने बौद्धका वेष बनाकर उन्ही की पाठशालामें पढ़ना प्रारम्भ किया , उसशालामें प्रत्येक विद्यार्थी से वेदों का दूषण लगाकर लेख लिखनेकी रीति है, जब इस भट्टपाद से कहागया तब इसनेभी वेदोंपर दोष लगाकर लेख लिखा, उसको पढ़तेहुए 'मैं ब्राह्मण होकर

कैसा अनुचित कर्म कररहा हूँ' ऐसा ध्यान होकर इसके नेत्रोंमें आँसू भरआये ऐसी दशा देखतेही 'यह बौद्ध नहीं ब्राह्मण है' ऐसा जानतेही उन तीन बौद्धोंने भट्टपादको टीले परसे नीचेको ढकेलादिया, उससमय गिरते २ तिस ब्राह्मण ने 'यदि वेद सच्चे हैं तो मेरा बाल बाँका न हो' ऐसाकहा और उसके चोट न लगी तथा भूमिपर आकर खड़ा होगया परन्तु इसमें उसका एकनेत्र जातारहा।

प्रभा०- अरेभाई जब उसने अपना सबभार वेदोंके ऊपर रक्खा तब उसका नेत्र क्यों गया ?

नील०- उसने (वेद यदि सच्चे हों) ऐसे सन्देह भरे शब्द उच्चारण किये थे इसकारण उसको यह दंड मिला।

प्रभा०--भाई उसको तिसनीच पाठशाला में पढना ही क्या पड़ा था ?।

नील० यद्यपि उसको हमारे सबशास्त्र आते ही हैं परन्तु खण्डन तो बौद्धोंका करना था और उनके शास्त्रोंका भेद कुछ भी मालूम नहीं था, इसकारण उनकी पाठशाला में पढनें को जानापडा।

प्रभा०—धन्य है धन्य है ऐसे सत्पुरुषको, जैसा तुम कहरहे हो इसके सुनने से तो निःसन्देह अवतारी ही प्रतीत होता है, नहीं तो ऐसा साहस कैसे करसकता था और ऐसा वेदका गौरव भी कैसे रहता? हाँ यह तो कहो फिर आगे क्या हुआ मुझे सुनने को बडी उत्कंठा होरही है, टीलेपर से धक्कादेने के अनंतर उस वेद के मर्मीने कौन काम करने का आरंभ किया है ?।

नील०—उसने अब यह विचार किया है कि-मैं बौद्धोंका प्रकट शत्रु होगया, और अब यदि निराश्रय रहा तो यह

नीच मेरे प्राण लेने में कुछ उठा न रक्खेंगे, इसकारण राजा का आश्रय लेकर एकवार उनके साथ वाद विवाद करूँ, फिर यश वा अपयश मिलना ईश्वरके अधीन है ।

प्रभा०—ओः यहांतक बात पहुँचगई ? अभीतक ब्राह्मण को ईश्वरके भरोसे पर ऐसा अभिमान है ? मित्र ! आज तुमने मुझको यह प्रिय समाचार सुनाया इसके लिये मैं तुम को बहुत २ धन्यवाद देता हूँ ।

नील०—मित्र ! पहिले यह चमत्कार तो देखो (परदे की ओर को दिखलाता है) बहुत से ब्राह्मण जिन में वह वेदाभिमानी परमपण्डित भट्टपाद भी तारागणों में शरदऋतु के पूर्ण चन्द्रमाकी समान शोभा पारहे हैं पुस्तकों के ढेर लियेहुए राजमहल की ओर को चलेजारहे हैं, न जाने अव क्या चमत्कार होगा, भाई इसको देखने का अवसर हमें न खोना चाहिये, चलो हम भी इनके ही साथ होलें

(दोनों जाते हैं) ।

तीसरा—दृश्य—राजमहल.

(आसनपर बैठेहुए राजा सुधन्वा का प्रवेश)

राजा- क्या करूं ? न जाने ईश्वर इन पाखण्डियों के संग से मुझे छुटावेगा या नहीं, अब यह अधम आगे पीछे आकर यहां धन्ना देंगे और दूषित वाणी से बड़ बड़ करेंगे, मैं उस को सुनूँगा ही नहीं, इस सन समूह में मेरी इच्छाके अनुसार बर्त्ताव करनेवाला केवल एक मेरा मन्त्री ही है, वस उन दुष्टों की बकवाद को सुनकर तपेहुए हृदय को शान्ति तो उस प्रियमन्त्री के भाषण से ही होती है । (परदे की ओर को देखकर-उधर कौन है रे ? इतने ही में द्वारपाल आता है)।

द्वारपाल--महाराज मैं दासानुदास हाजिर हूँ (प्रणाम करताहै

राजा–अरे दुर्मुख ! विजयपाल मन्त्री को बुला ला।

द्वारपाल–जो आज्ञा (ऐसा कहकर परदे के भीतर जाता है और फिर मन्त्री के साथ प्रवेश करताहुआ मन्त्री से कहता है) चलिये, श्रीमहाराज कुछ आज्ञा करने के लिये इधरको ही दृष्टि लगाए बैठे हैं।

मन्त्री–(सिंहासन के समीप जा प्रणाम करके) महाराज की जय हो, श्री महाराज ने इस दास को कौन आज्ञा क-रने के लिये स्मरण किया है।

राजा–प्यारे मन्त्री ! समझ बूझकर दुराचरण करना और निजजनों को विरुद्धआचरण करना, यह दोनों ही परमदुःखकी बात हैं, यह दोनों ही बातें जिसके गले पडें वह प्राणी मेरी समझमें इस दुःखको नरकवास से भी अ-धिक मानेगा, मन्त्री ! मुझे सार्वभौम पद मिला है, अ-संख्य धन है, अमृत पीने के सिवाय इन्द्रपद का सबही सुख है, यह कहना अनुचित नहीं है। परन्तु उन ऊपर कही दोनों बातों की झंझट में पडजाने से मुझे यह अपने प्राण भी भार मालूम होरहे हैं, जैसे औषध न मिलने के कारण रोग बढकर शरीर को क्षीण करडालता है, तैसे ही मेरी यह पीडा बहुत ही बढगई है अतः अब मुझे निश्चय होगया कि यह प्राणों को लेकर ही मेरा पीछा छोडेगी।

मन्त्री–महाराज ! श्रीमान् के इस गूढ भाषण को यह मन्दमति स्पष्टरूप से नहीं समझसकता, इसलिये एकबार फिर स्पष्टरूप से कहने का परिश्रम करिये।

राजा–मन्त्री ! इस में गूढ ही क्या है, भाई इस बौद्धधर्म को वेदबाह्य समझ बूझकर पातक करने पडते हैं और राज नीति निजजनों के प्रतिकूल कार्य कराती है, देखो यह-

दोनों ही काम मुझ एक के हाथ से होने के कारण प्राणान्त सङ्कट होरहा है ।

मंत्री-राजाधिराज ! ऐसे अधीर न हूजिये, यदि कांच हीरेके स्थानपर पहुँच भी जायतो वह उस स्थानपर बहुत दिनोतक नहीं रहसकता, परीक्षा के समय 'काचः काचो मणिर्मणिः' काच काच ही होगा और हीरा हीराही होगा, हे स्वधर्मपालक ! आप अपने चित्तमें कुछभी खेद न मानिये ।

राजा०-हाँ ! अच्छा स्मरण आया, क्या कोई ब्राह्मण-कुलका उद्धारकर्त्ता भट्टपाद उत्पन्न हुआ है ? तुमने ही तो मुझसे कहाथा कि-कहीं से गुप्तपत्र में यह समाचार आया है, उसकी सत्यताके विषय में कोई दूसरा समाचार मिलाक्या?

मंत्री-महाराज और प्रमाण की कौन आवश्यकता है, वह भट्टपाद ही अनेकों श्रेष्ठ ब्राह्मणों सहित कल श्रीमान् के नगर में आकर एक शिवालय में ठहर रहे हैं वह आज राजसभा मेंभी आनेवाले हैं ।

राजा-(प्रसन्नमुख होकर) ओहो ! क्या यहाँ उनका शुभागमन हुआ है ? ।

मंत्री-हाँ हाँ, जब मैंने यह समाचार अपने दूत के मुख से सुना उसी समय शिवालय में गया और अपनी आँखों से देखकर निश्चयकर आया हूँ ।

राजा-मंत्री ! तुम धन्यहो, उन महाभाग के दर्शन करके तुम पवित्र होगये, इस अधम को न जाने कब दर्शन होंगे ।

मंत्री-महाराज ! सावधान हूजिये, यह सभा में नित्य आनेवाले जैन, कापालिक, दिगम्बर, भैरवी, क्षपणक आदि पंडित आरहे हैं ।

राजा-हे ईश्वर ! इन वेदनिन्दकों का तो मुख न दिखा

(इतने ही में पूर्वोक्त सब पंडित क्रमसे आकर, राजा की जय हो, ऐसा कहते हुये अपने २ स्थान पर बैठते हैं)

राजा--(माथेपर हाथ रखकर) मैं सब पंडितों को अभिवादन करताहूँ ।

सब पंडित--महाराज के मनोरथ सिद्ध हों ।

(इतनेही में द्वारपाल घबड़ाया हुआ आता है)

द्वारपाल--(हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके) पृथ्वीनाथ ! कितनेही ब्राह्मण राजद्वार पर आकर खड़े हैं और श्रीमान् से मिलनेकी इच्छा करते हैं, जैसी आज्ञाहो वही कियाजाय

जैनपण्डित--(बीच मेंही) राजन् !तुम्हारे समय में ब्राह्मणों का आवागमन बहुत बढ़गया है, परन्तु यह हमारे कुलाचार के प्रतिकूल है, ऐसा करने से तुम्हारे ऊपर बुद्ध भगवान का कोप होगा, इसकारण उन ब्राह्मणों को सभा में आने की आज्ञा न दीजिये ।

राजा--(मंत्री की ओरको मुख करके) क्यों मंत्री ! मेरी उससमय कही हुई दोनों बातें सामने आईं न ? (पंडितोंकी ओर को फिरकर)महाराज ऐसा करना राजनीति के विरुद्ध है, राजधर्म सबजाति के लिये एकसमान है, वह ब्राह्मण किसी से कष्टपाकर प्रार्थना करने को आये होंगे, अथवा उनको चोरों ने लूट लिया होगा इस से रक्षा चाहने आये होंगे, अभी कोई बात तो मालूम हुई ही नहीं, यदि इस दशा में उनकी प्रार्थना नहीं सुनूँगा तो, प्रजा मुझे अच्छा नहीं कहेगी, इसकारण मुझे उनसे अवश्य ही मिलना चाहिये और उनका उचित सन्मान भी करना चाहिये,(द्वारपालसे) जा रे ! उनको राजसभा में आने दे (मंत्रीसे) सचिव ! उनके बैठने के लिये मेरे दाहिनी ओर सुवर्ण का सिंहासन मँगवाकर बिछवाओ ।

मंत्री-जो आज्ञा है महाराज ! (ऐसा कहकर सिंहासन बिछवाता है) ।

बौद्धादि सब पंडित दाँतों से ओठोंको चबाते और कानाफूसी करते हुएमौन होकर जहाँ के तहाँ बैठे रहते हैं, इतने ही में ब्राह्मणों के समूह के साथ भट्टपाद प्रवेश करते हैं, राजा उनके सन्मुख जा साथ लाकर आसनपर बैठाताहै

राजा-(बडी प्रसन्नता के साथ प्रणाम करके) आपके दर्शन से मैं धन्य और परम कृतार्थ हुआ इस चरणधूलि से मेरा घर पवित्र होगया (शरीर को रोमांचित करके) आहा ! यह कैसे आनन्द का समय है, मानों इस आलसी के ऊपर, सकल जगत् का उद्धार करने वाली और आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीनोतापों को भस्म करनेवाली श्रीगंगाजी का प्रवाह आपडा ! मानो राजसूय अश्वमेध आदि अनेकों यज्ञ और बड़े २ व्रत करनेपर भी जो फल मिलना कठिन है वह सहज में ही मेरे हाथ आगया, अधिक क्या कहूं, आज के आनन्द का मैं वर्णन नहीं करसकता, प्रतीत होता है मुझे अनेकों जन्मों में संचित करेहुए अपने सुकर्मों का यह फल मिला है,अच्छा कहिये महाराज! कौनसी आज्ञा करने के लिये आपने स्वयं यहाँतक आने का परिश्रम किया है, इसबातको जानने के लिये यह दास उत्कंठित होरहा है ।

सब जैनबौद्ध-(कानोंपर हाथ रखकर) अर्हन् अर्हन् अर्हन्. ऐसी भक्ति ! ऐसी स्तुति ! अरे चांडाल ! हमारे सामनेही तू ऐसा करता है ? (आकाश की ओर देखकर) भगवन् सुगत ! गधों को पकवान खिलानेवाले इस कुल कलंक का तुम नाश क्यों नहीं करते ।

भट्टपाद-राजन् ! तुम सकल वर्णाश्रमोंका पालन करने

वाले हो, इसकारण केवल तुम्हारा दर्शन करने की ही इच्छा थी (मनमें) यह अनेकों बौद्ध पंडित बैठे थे, कोई कारण खडा करके इनके साथ वाद विवाद करना चाहिये, जब आये हैं तो कुछतो करके चलें, (इतनेही में एक कोकिल बोली उसके शब्दको सुनकर) धन्य कोकिले ! धन्य है, तेरा स्वर कानोंको कैसा मधुर लगताहै, तेरे इस अलौलिक गुणके कारण लोगोंको तेरेऊपर परम प्रीति करना चाहिये परन्तु लोग इसकारण तुझसे प्रीति नहीं करते कि-नीच काकों से तेरा संग होगया है, नहीं तो जैसे लोग तोते को पिंजरे में रखकर आनन्द पाते हैं, तैसेही तुझको भी अपने पास रखते, कुसंग सकल गुणों का नाश करके जहाँ तहां तिरस्कार कराकर दुतकारे दिलाता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यहीं है कि- यह राजा सुधन्वा कैसा गुणसम्पन्न, परमदयालु, दानशूर और सत्यप्रतिज्ञ है परन्तु इन नीच वेदनिन्दक बौद्धों के संग से लोग इसका तिरस्कार करते हैं (राजा की ओर को) राजन् ! यह वेदनिंदक द्वेषपूर्ण बौद्ध तेरी संगति के योग्य नहीं हैं, महारोग सहा जासकता है परन्तु इन नीचों का मुख देखना सह्य नहीं होता, हे निष्कलंक राजन् ! तुझ में और इनमें बड़ा अन्तर है, तू रत्न समान है यह जहरीले पत्थरकी समान हैं, तू राजहंस की समान है यह काककीसमान हैं इसकारण तुझको इनके संग से बचना चाहिये ।

बौद्धकिशोर--(दुःखित होकर) अरे मिथ्याभाषी!इस राजसभा में अतिथि की समान आकर इस डरपोक राजा के देखते हुए, तू हम निष्पापों की निंदा करता है ? अरे नीच ब्राह्मण ! तुझे ऐसा बडा घमंड किसके भरोसे पर है?

अरे कृतघ्न ! हमारी ही पाठशाला में कपटरूप से पढकर हमारे ही ऊपर फिर पडा है, समझरख इन असंख्य पातकोंका दंड पाये विना तू इस राजसभा के बाहर जीवित नहीं जासकेगा।

भट्टपाद--(हाथ उठाकर) अरे भ्रष्टपशु ! मैंने तुम्हारी शाला में पढकर तुम्हारे शास्त्रों का भेद जानलिया है, अब मैं केवल निंदा करके ही तुमको नहीं छोडूँगा, किन्तु आज इस सभा में ही युक्तिरूपी कुल्हाडी से तुम्हारे सिद्धान्तरूप वृक्ष के खंड २ करके तुम्हें धूलि में मिलादूंगा, अरे ! आज-तक तुमने जितने ब्राह्मणों का इस थोथे मत से तिरस्कार किया है उनमें मुझे न समझना, (छातीपर हाथ रखकर) किन्तु यह बौद्धसन्तान--धूमकेतु भट्टपाद है, तुम को जो कुछ प्रश्न करने हों करो।

कविकंठपाश--(आगे को सरककर) अरे भ्रष्टकुलसं-जात ब्राह्मण ! तू जिस मतका अभिमान रखकर इतना उन्मत्त हो ऐसा साहस करने को उद्यत हुआ है, उस में कौनसी बात सत्य है ? शरीर पर राख मल, वन में रहकर तथा निराहार व्रत रखकर, वर्षा और धूपको सहने से यदि मुक्ति मिलती तो खाना पीना छोडकर वर्षोंतक धूप और वर्षा को सहने वाले पत्थर आज कहीं दीखते भी नहीं सबही मुक्त होगये होते, अरे ! ऐसा भिखारीमत, गृहस्थों को ठगकर पेट भरने के लिये तुमने ही अपने मन से गढकर चलाया है,क्या पंडित कभी ऐसे मतका सन्मान करसकते हैं।

भट्टपाद--अरेनास्तिक ! हमारे मतके तत्त्वको न जानकर अट्टसट्ट बातें बनाने से क्या तू मुझको जीतसकेगा ? अरे ! जड़ और चैतन्यकी एकता करने वाला तू हमारे मतको क्या जानसक्ता है ? मट्टी और कस्तूरीमें क्या भेद है, ऐसा यदि

किसी गधेसे बूझाजाय तो वह एकसा रंग होने से दोनोंको एकही बतावेगा, सर्वत्र दृष्टान्त और दार्ष्टान्त की पूर्ण समता नहीं होतीहै, इसवातको जो नहीं जानता है ऐसे वादमें यदि आगे बढै तो उसके दाँत टूटेविना नहीं रह सक्ते, इसलिये अरे महामूर्ख ! पीछेको हट ।

बौद्धकिशोर--अरे विना पूँछ सींग के पशु ! तुम्हें मिष्टान्न खाने की इच्छा होती है तो श्राद्धके वहाने से पकान्न खाते हो और कहते होकि--इससे पितर तृप्तहोतेहैं, यदि यहसत्य है तो दीपक बुझजाने पर तेल डाल देनेसे वह दीपक फिर प्रज्वलित होजाना चाहिये;तैसेही--हम मांस भक्षण नहीं करते हैं, लोगों को ऐसा ढंग दिखाकर जव मांस भक्षणकी इच्छा होती है तव यज्ञके वहानेसे हिंसा करके मांस खातेहो और कहते होकि वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अर्थात् वेद की हिंसा हिंसा नहीं है किन्तु यज्ञमें वधाकिया हुआ पशु अपने वयालीस पूर्वजों सहित स्वर्ग को जाता है, फिर उस यज्ञ के करने वाले को न जाने कितना फल मिलेगा ? इसपर हम कहते हैं कि पितरों को स्वर्ग देने के लिये जो कहतेहो उसमें अपने मावाप का वध क्यों नहीं करते हो ? अर्थात् पशुके स्थान में तुम्हारे मावापही वयालीस पूर्वपुरुषों सहित स्वर्ग को चलेजायँगे और तुम्हारी मांस भक्षण की इच्छा भी पूरी होजायगी ।

भट्टपाद--अरे ! वकवादी ! इसका उत्तर मैं तुझे थोडे ही में देता हूँ, यह सव काम वेद के प्रमाण से किये जाते हैं, और यज्ञ, याग, जप, तप आदि सव साधन वेद ने ही वताये हैं,इसकारण उन वेदोंकी अप्रमाणता सिद्ध करे विना इस में कहे हुए कर्म असत्य सिद्ध नहीं होसकते, यदि शक्ति होतो वेदकी अप्रमणता सिद्ध करो ।

अमरसिंह--(बीच में ही) मित्रों ! अब गड़बड़ न करो, अब मेरे हाथ में आगया, अब मैं इसको, बौद्धमत की निंदा का क्या फल मिलता है सो दिखाये देता हूँ, अरे बैल ! तू जिन वेदोंको पवित्र मानताहै उन वेदोंके ऊपर लात मारने वाले हम बौद्ध क्या उन वेदों को अप्रमाण कहने में डरते हैं ? मैं स्पष्ट कहता हूँ, कि तुम्हारे वेद असत्य का भण्डार हैं, नहीं तो उनकी सत्यता दिखा ।

भट्टपाद--अरे बौद्धबालक ! बता किस प्रकारकी सत्यता देखना चाहता है, परन्तु वाद की रीतिको न छोडना ।

अमरसिंह--अरे ब्राह्मण के बालक ! उन वेदों का जो अर्थ हो उसकी सत्यता प्रत्यक्ष करके दिखा, तब तेरी बात ठीकहो ।

भट्टपाद--अरे वाचाल ! वेद अनन्त हैं, उन में से हरएक अर्थ की सत्यता दिखाने के लिये तो असंख्यों वर्ष चाहियें, फिर हमारे इस विवाद का निर्णय कैसे होगा ? ।

अमरसिंह=अरे ! पकतेहुए भातके सब शीत नहीं देखे जाते हैं, किन्तु एक कण देखलेने से ही मालूम होजाता है तैसे ही अपने वेदों में के किसी एक अर्थकी तो सत्यता दिखा वस हम मानलेंगे ।

भट्टपाद--(सन्तुष्ट होकर) यह कौन बात है ? अरे नीचो मेरी विजय तो होगई (राजा से) राजन् ! आप मध्यस्थ होकर देखिये, अब मैं इनको जीते लेता हूँ, अरे वेद निंदक नीच बौद्ध ! मैं कहता हूं, इस श्रुति के अर्थपर ध्यान दे ।

अमरसिंह- दिया दिया; बोल अब वह कौनसी श्रुति है; मैं सब जानता हूं, तुम्हारे वेदकी बकबक में--ईश्वर के सहस्र मुख चार सहस्र चरण, बस ऐसी ही बातें भरी हैं, उन में

से तुझे कौनसी सत्यार्थक श्रुति का स्मरण है बोल ?।

भट्टपाद—तो क्या ऐसा हो नहीं सकता है ? सुन—'अग्नि-र्हिमस्य भेषजम्' क्योंरे मिथ्याभाषी ! इसश्रुति का अर्थ तू जानता है ?

अमरसिंह—मेरेजानने को रहने दे, तूही बता, इसश्रुति में क्या बकवाद है।

भट्टपाद—अरे अधम ! 'अग्निः' आग 'हिमस्य' शीतकी 'भेष-जम्' औषध है, अब इसकी सत्यता को तू अपने आप प्रत्य-क्ष करदेख, मनुष्य को शीत लगनेपर, अग्निकुंड के समीप जाकर तापने से शीत जाता रहता है, क्यों वेद प्रमाणभूत होकर उसमें कहेहुए सकलधर्म सत्य होनेपर, उसकी निन्दा करनेवाले तुम दंडके योग्य हो या नहीं (इतना कहतेही सब ब्राह्मण-जीतलिया, जीतलिया ऐसा कहकर तालियें बजाते और अँगोछे उछालते हुए बड़ाभारी कोलाहल करते हैं)

सब बौद्ध—(बहुत चिल्लाकर) ऐसे निर्णय नहीं हुआ, यह हमारी बताई हुई श्रुति के अर्थको सत्य करके दिखावै (ऐसा कहकर वहभी बड़ी कलकल करते हैं, इसप्रकार कोला-हल से सब सभा गूँज उठी)।

राजा—(सब कोलाहल शांत होनेपर बौद्ध पंडितों से) क्यों पण्डितो ! तुमवादमें हारगये, ब्राह्मणों ने तुमको जीतलिया अब तुमको और मुझे दोनोंको इन का शिष्य होना उचित है।

बौद्धकिशोर—(खिझाकर) अरे निर्लज्ज ! यहक्या कहता है ? ऐसा यह बौद्धमत ! क्या एकाध श्रुति से खंडित होस-कता है। हमस्पष्ट कहते हैं कि—इसश्रुति को नहीं मानते, हम बतावें, उसश्रुति के अर्थ को यह सत्य करके दिखावें।

राजा-(विचारकर) हाँतो अब वादकी आवश्यकता नहीं है, मतके सत्य असत्य होनेमें मैं दैवी प्रमाण निकालता हूँ, वह यह हैकि यह हमारे नगरके समीप का पर्वत बहुत ऊँचा है, उसके ऊपरसे नीचेको कूदकर जो जीवित रहेगा, उसका मतही सच्चा समझा जायगा, तुम कूदो चाहें ब्राह्मण कूदें ।

सबबौद्ध-(आपसमें) क्यों भाई ! राजाने यह युक्तितो अच्छी निकाली, अब उसकोही पर्वत के ऊपर से कुदाओ बस यह दुष्ट अनायास में ही मरजायगा, ऐसे ऊँचे पर्वतके ऊपरसे गिरकर मनुष्य जीता रहही नहीं सकता, हाँतो अमरसिंह जी तुमही इस विषयमें राजा से कहो ।

अमरसिंह-अच्छी बात है (राजा से) महाराज ! यह बात ठीक है और हम इसको स्वीकार करते हैं, परन्तु वाद करने को यह ब्राह्मण आया है, इस कारण पहिले इसकोही कूदना चाहिये ।

राजा-हे महाराज भट्टपादजी ! मेरी कहीहुई परीक्षादेने को तयारहो क्या ?

भट्टपाद-(खडेहोकर) तयारहोनेकी क्या बूझतेहो, विलम्ब न करिये.अबही चलिये(ऐसा कहकर सब ब्राह्मणोंके साथ चलने लगते हैं)

राजा-(शीघ्रता से) चलोतो सब पर्वत के समीपचलें (सब बौद्धभी चलने लगते हैं)

(पर्वतके समीप पहुंचने पर)

राजा-हे ब्राह्मण कुल भूषण ! वह पर्वत यहीहै, इसके ऊपर सेछलांग मारकर यदि तुम अक्षत रहोगे, तो तुम्हारे मत को यह बौद्ध सच्चा मानेंगे ।

भट्टपाद-बहुत अच्छा,(ऐसाकहकर पर्वतके ऊपर चढ़,हाथ

जे डे खडे होकर)हे वेदपुरुष! तुम्हारे उद्धारके लियेमैं यहसा-
हस करता हूँ अब यशदेना तुम्हारेही अधीनहै। हेकैलाशनाथ
शिवजी! कृपा करिये। अब राजा, सकल बौद्ध, सकल ब्राह्मण
और अन्यसकल कौतुकी पुरुषभी मेरी प्रतिज्ञा को सुनो, (ऊँ
चे स्वरसे)यदिवेद प्रमाणहों, यदि यह पातकी बौद्ध निंदित
हों तथा सकल ब्राह्मण पूजनीय हो तो इस गिरने में मेरे शरी-
रको कुछभी कष्ट नहो, अब सब देखें जय शिवशंकर जय।
ऐसा कहकरछलांग मार किसी प्रकारका कष्टन पाताहुआ
पृथ्वीपर अक्षत खडा होताहै)।

राजा--(समीप आ श्चर्य के साथ देखकर)धन्य धन्य भट्ट-
पाद धन्य निः सन्देह तुह्मारा धर्म सत्य है, (ऐसा कहकर
हृदय से लगाताहै)

कविकंठपाश--(दुःखित होकर)राजन्!यह क्या बालकोंकासा
खेल कररहे हो,इसप्रकार क्या तुम मतका निर्णय करसकते
हो। अरे!मणि,मंत्र,औषध आदिसे ऐसे काम होसकते हैं।
कलको कोई मल्ल आकर इस सेभी अधिक ऊंचेसे कूदजायगा
तो क्या उसका मत सच्चा होजायगा?अर्हन्!अर्हन्! हम तुमारे
ऐसे असार बर्त्ताव को कभी स्वीकार नहीं करसकते।

राजा--(नेत्रोंकोलाललकरके)अरे आजतक मैंने तुमसे कोई
पोच बात नहींकही,परंतु अबमैं स्पष्टकहताहूं कि--तुम महापा
तकी,अधम चांडालहो;तुमको यहबात माननी नहींथी तो इस
ब्राह्मणको ऐसा साहस करनेका परिश्रम क्यों दिया? अ
च्छा मूर्खो! अब तुम्हारा निवटारा करताहूं (ऐसा कहर मंत्री
को बुला उससे एकान्तमें कहताहै)मंत्री विजयपाल! मैं जोकुछ
कहताहूं उसको अभी तत्काल इसप्रकार ठीक करलाओ कि--
कोई जानने न पावे।

मंत्री-महाराज ! जो आज्ञा होगी उसको अभी ठीक करलाता हूँ ।

राजा-(मंत्री के कानमें कहता है) एक ताँबे के कलश में शिकार खाने में का कालासर्प इसप्रकार बंद करलाओ कि कोई जानने न पावै और उस कलश का मुख अच्छे प्रकार बंद करके अभी सभा में लेआओ, चलो उठो, देर न करो ।

मंत्री-(भीतर जाकर मुख बँधाहुआ कलश लिये लौटकर आता है) महाराज ! आज्ञानुसार यह कलश तयार होकर आगया ।

राजा बहुत अच्छा, इसको बीच में रक्खो ।

(आज्ञा के अनुसार मंत्री कलश रखता है)

राजा-(ऊँचे स्वर से) अब मेरी अन्त की प्रतिज्ञा को सब सुनलो (कलश की ओरको अंगुली उठाकर) इस ताँबे के कलश में कोई वस्तु मैंने अपने आप गुप्तरूप से रक्खी है, बताओ वह क्या है ? जो सत्य कहैगा, उसके ही मतको मैं सच्चा मानकर प्राणों से भी अधिक समझूंगा और जो मिथ्यावादी ठहरेगा उसका बीजनाश करदूंगा, उसके कुटुँबभरको मरवादूँगा, और अपनी इस प्रतिज्ञा में अन्तर करूँतो अपने बयालीस पूर्व पुरुषों सहित नरक पाऊं, बौद्ध पंडितो ! अब मैं किसीकी भी हैं हैं,हैं नहीं सुनूंगा,शीघ्र बताओ इसमें क्या है।

सब बौद्ध-(आपस में)अबतो भाई बडी टेढी खीर होगई इस छिपीहुई वस्तु को हम कैसे समझसकेंगे, हे अर्हन् ! गुरो अब तुम ही रक्षा करोगे ।

अमरसिंह-अरे भाई ! इतनी पंचायत में क्यों पडते हो, एक क्षपणकधर्मी रम्माल मेरा मित्र है वह शकुन देखकर चाहे जैसी गुप्त वस्तु को बता देता है, बस राजा से आजके

दिन की छुट्टी माँगलो, रातको इस में की वस्तु क्षपणक से बूझकर प्रातःकाल आतेही बतादेंगे, और काम सिद्ध होजायगा कहदो राजा से।

बौद्ध किशोर–हे महाराज! आपने परम दुःखित होकर ऐसी प्रतिज्ञा की है परन्तु विचारे विना हम इसका उत्तर नहीं देसकेंगे, इस लिये कृपा करके हमको आजके दिनकी छुट्टी दीजिये, बस कलको आते ही इस घट में जो वस्तु है, बतादेंगे।

राजा–(भट्टपाद की ओर को मुख करके) क्यों महाराज! इसबात में तुम्हारी कोई हानि तो नहीं है, यह कल उत्तर देने को कहते हैं।

भट्टपाद–राजन्! मेरी ओर से तो तिलभर भी विलम्ब नहीं है, मुझ से कहिये तो इस में जो कुछ वस्तु है इसी समय बताढूं, यह कलको बताने कहते हैं तो योंही सही और रातभर जीलें।

राजा–अच्छा तो चलिये, कल सूर्योदय होतेही सब यहां इकट्ठे होजायँ, (मंत्रीसे) विजयपाल! प्रातःकाल से पहिले२ अपने लशकर में के सब सवार और सिपाही तोपखाने को लेआवें और सभाके भरते ही राजमहल के चारों ओर खडे होजायँ, क्योंकि–दोनों में से एक पक्ष को तो प्राणान्त दण्ड देना ही होगा, इसलिये तुम तयारीके लिये अभी से सावधान रहो, (कुछ देर विचार कर) हाँ! कलश में की वस्तु को तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं जानता है, अतः कहेदेता हूं कि–यदि किसी ने यह भेद जानलिया तो तुम्हारा शिर कटवाळूंगा, अच्छा तो अब सब चलें (सबजाते हैं)।

—०—

चतुर्थ–दृश्य।

(तदनन्तर मलिनमुख रोताहुआ विदूषक आता है)

विदूषक–(आपही आप) न जाने मेरे भाग्य में क्या

लिखा है ! बौद्धाचार्यों के साथ रहने से, रूपवती स्त्रियों के हाथों मे उत्तम उत्तम पकवान खाने को मिलते हैं, काम नहीं धाम नहीं, पहिले तो बस्ती के देवमंदिर में पडा रहता था, झाड़ बुहारी देने से एकवार ही खाने को मिलजाता था, अब तो दिन में दो बार भोजन मिलता है, इसी कारण तो ब्राह्मणसे जैन होगया हूँ, परन्तु, अब मेराभाग्य फूटगया, क्यों कि कोई भट्टपाद ब्राह्मण बौद्धों का विध्वंस करने को उद्यत होगया है, कलको सबबौद्ध और जैनोंके प्राण बचना कठिन हैं चारोंओर यही चर्चा फैलरही है अब मैं क्या करूँ ।

(इतनेही में हँसताहुवा सूत्रधार आताहै)

सूत्रधार—अरे मित्र ! क्याहुआ ? कहोतोसही किसकारण रोतेहुएसे दीख रहे हो ।

विदूषक—भाई तुम भाग्यवानहो, मैं तुम्हारी हँसी करताथा और तुम्हारे सामने अपने सुखकी डींग मारताथा, परंतु तुम अपने धर्म को न छोड़कर ब्राह्मणही रहे परन्तुमैं उस बौद्ध संन्यासीकी बातों में आकर झगड़ेमें पड़गया (ऐसा कहकर अति ऊँचे स्वरसे रोता है)

सूत्रधार—अरे तो ऐसा क्यों घबडा रहा है ? ऐसी कौनसी विपत्ति आगई जो चीख माररकर रोता है ? ।

विदूषक—अरे ! कलको मारे जायँगे, फिर रोऊँ नहीं तो क्या करूं ? भाई ! तुम्हारे जाने क्या है, जिसपर पडती है वही जानता है ।

सूत्रधार—भाई ! मुझे तो मालूम नहीं कि—तुम्हारे ऊपर ऐसी कौनसी विपत्ति आई है ।

विदूषक—तुम्हें काहेको मालूम होगा ? चतुर होना! सुनो-बौद्ध जैनों का ब्राह्मणों के साथ वाद विवाद हुआ था फिर

कलश में कुछ डालकर, राजा ने सभा में रखदिया है, उस को जो नहीं बतासकेगा वही कल मारडाला जायगा, इस कारण ही मैं रोता हूं।

सूत्रधार–अरे! ऐसा क्यों घवड़ाता है,भला तूने यह कैसे जानलिया कि–बौद्धजैन पंडितो का ही पराजय होगा?

विदूषक–भाई! कोई घट्ट पैरो का ब्राह्मण है, उसको दिव्यज्ञान है, इसकारण वह सहज में ही इनको हरादेगा और ऐसा ज्ञान हमारे भोजन प्रेमी भाइयों को है नहीं।

सूत्रधार–अरे! उन्होंने क्षपणक नामवाले शकुनिये से उस वस्तुको जानलिया है, परंतु देखो कल क्या होता है।

विदूषक–तब तो फिर मैं अब किसी देवता से भी नहीं डरूँगा, कल को एक उपासक के यहां हमारे यति जी का निमंत्रण है तहाँ खीर पूरी खाऊँगा और आनन्द से मठ के भीतर पैर फैलाकर सोऊंगा।

सूत्रधार–परंतु मित्र अब कौतुक देखनेके लिये तुम राजमहल को क्यों नहीं चलते? देखो वह सब बौद्धजैनों के झुंड और ब्राह्मणों के समूह,जैसे छत्तेपर को मक्खियँ जाती हैं तिसीप्रकार राजमहल की ओर को चले जारहे हैं, चलो तो चलो नहीं मैं तो जाता हूं।

विदूषक–नहीं भाई मैंतो नहीं जाऊंगा, कहीं बौद्धजैनों की हार होगई तो मुझको भी सूलीपर चढादेंगे, इस लिये मैं तो भागाजाता हूं, यदि बौद्धजैन हार गये तो ब्राह्मण बन जाऊँगा,नहीं जैनतो बनाबनाया ही हूँ। (ऐसा कहकर भागता है और सूत्रधार भी दूसरी ओर को जाता है)।

—०—

पञ्चम–दृश्य।

(राजा सुधन्वा मंत्री का हाथ पकड़ेहुए आता है)

राजा- मंत्रिवर! वह कलश भंडारखानेसे मँगवाकर यहाँ

रखवाओ और सबों को बुलाने के लिये सिपाही भेजदो।

मंत्री-श्रीमहाराज! आज्ञाके अनुसार कलश मँगाकर रख दिया है, (कलशकी ओरको अंगुली दिखाता है) अब सिपाही भेजनेकी कौन आवश्यकता है, यहबौद्ध जैन पंडित सब आहीगये और ब्राह्मणभी आतेही हैं।

राजा-(घबड़ाकर) अहो मंत्रिन्! उन बौद्ध जैनों के मुखों को देखकर अनुमान तो करो, प्रसन्न हैं या निस्तेज?

मंत्री-(परदेमें देखकर) महाराज! उनके मुखतो प्रसन्न से दीखते हैं. इस से तो मालूम होता है कि-यह निर्भय हैं।

राजा-(लंबीश्वास छोड़कर) क्या इन नीचों ने कलश मेंकी वस्तु को जानलिया? प्रधानजी! यदि ऐसाहुआ तब तो बड़ी कठिनता होगी,क्योंकि प्रतिज्ञा मैंनेबड़ी दारुणकी है।

मंत्री-महाराज! आप भय न करें, जैसे पहिले दोबार ब्राह्मणों को यश मिला है तैसेही अबभी मिलेगा।

राजा- हां! मैंनेकलजो कहाथा, तदनुसार सेना तो तयार है ना?

मंत्री-महाराज! आज्ञाके अनुसार सब ठीकहै, किसी प्रकारकी चिंता न करिये।

(इतनेहीमें ब्राह्मण और बौद्ध जैन आकर अपने २ स्थानपर बैठते हैं)

राजा-(सब सभाको भरीहुई देखकर) मैं दोनो ओरके पंडितोंको प्रणाम करताहूँ।

ब्राह्मण और जैन-(एकसाथ) सदाजयहो।

राजा-प्रधानजी! अबमेरी अन्तकी प्रतिज्ञा इन दोनों बादियों को सुनादो।

मंत्री-जो आज्ञा (ऐसाकह खड़ेहोकर) मेरे कथनको सब पंडित सुनलें-(ऊँचे स्वरसे) ब्राह्मणों के साथ बौद्ध जैनों

का मत विषय में वाद विवाद होकर अन्त में श्रीमहाराजाधिराज ने यह विचार करलिया है (कलशकी ओरको अंगुली करके) कि-इस कलश में श्रीमहाराज ने अपने आपजो गुप्त वस्तु रक्खी है, उसको जिसपक्ष के पुरुष बतादेंगे उसका मत सच्चा और जो न बता सकेंगे उनका मत झूठा समझा जायगा, और जो झूठे ठहरेंगे उनको कुटुम्ब सहित प्राणान्त दण्ड देने के लिये श्रीमहाराज ने तोपें मँगवाकर खड़ी करली हैं और राजमहल के मैदान में शूली तथा फाँसी देने के खंभे खड़े करदिये गये हैं,यह बात सब देखलें.तब जिनको जो कुछ कहना हो कहें, एकबार मुख में से अक्षर निकल जाने पर वह राजकृपा या राजदंडके पात्रहुए विना नहीं बचेंगे और फिर उनकी दूसरी कोई बात नहीं सुनी जायगी (ऐसा कहकर अपने आसन पर बैठता है)।

राजा-सबों ने मेरी प्रतिज्ञातो सुनहीली, तो अब मैं फिर प्रश्न करता हूँ हे बौद्ध पंडितो ! इस कलश में क्या है बताओ ? ।

बौद्ध किशोर-(बड़े आनंद के साथ आगे को बढ़कर) श्री महाराज ! इस कलश में महासर्प है ।

राजा-(यह सुनकर सिंहासन परसे नीचे गिरता है और सेवक उठाते हैं)

मंत्री-(घबड़ाया हुआ समीप आकर) महाराज ! सावधान हूजिये, सावधान हूजिये, कौन हैरे ? शीघ्रता से जलला (सेवक पानी लेकर आता है और मंत्री उसको राजाके नेत्रों में लगाता है) ।

राजा-(सावधान हो माथे पर हाथ रखकर)शिव!शिव!मैंने कैसा चांडालकर्म कियाहै!मैं कितना अधम पातकी हूँ ! देव!

मुझअपयशी पुरुष को ऐसा राज्य क्यों दियाथा ! जिन ब्राह्मणों को दुःख से छुड़ाने के लिये मैं उत्कंठित रहता था, हय ! क्या अब उनको मैं मरवाउँगा ! ,नहीं नहीं चाहे यह मेरा शरीर न रहे, चाहें मेरे पितर नरक में जायँ,परन्तु मैं ऐसा कुकर्म कदापि नहीं करूँगा,हे चन्द्रभाल शङ्कर! अब अपना शिरश्छेदन करडालने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है(ऐसाकह कर गरदन के ऊपरको तरवार उठाता है)

भट्टपाद-(घबड़ाएहुए आगेजाकर)हैं हैं , हे सत्यप्रतिज्ञ राजन् ! यह क्या करते हो ? (ऐसा कहकर तरवार छीन ते हैं)महाराज! वाद का निबटारा करे विना यदि प्राण खो दोगे तो नरक में पड़ोगे,इसलिये केवल एक ओर की बात सुन कर ही निर्णय न करो,इस कलश में बौद्धोंकी बताईहुई वस्तुनहीं है,जोकुछ है उसको मैं बताताहूँ ।

राजा-अबक्या सुनूँ ? (ऐसा कहकर माथे पर हाथ रखता है) अच्छामहाराज ! कहियेर,इस में क्याहै ?

भट्टपाद-इस मेंसर्प नहीं है,किंतु उस सर्प के ऊपर शयन करनेवाले श्रीनारायणकी ताम्रमयी मूर्ति है, निकाल करदेखो

राजा-मंत्री ! खोलो इस कलश का मुख ।

मंत्री-जो आज्ञा (ऐसाकहकर कलशका मुख खोलताहै और उसके भीतर सर्पन निकलकर ताम्रमयी विष्णुमूर्ति निकलतीहै)।

राजा-(देखतेही आश्चर्य और आनन्द से प्रफुल्लितहोकर) आहा हा !! (ऊपरको मुखकरके) हे प्रभो पुराणपुरुष ! तुम्हारी शक्ति अपारहै, तुम्हारी माया ब्रह्मादिकोंको भी चकित करतीहै, फिरऔरों कीतो बातही क्या ? (ब्राह्मणोंकी ओरको फिरकर) आहा ! यह कैसा चमत्कार है, मैं-

ने अबने आप सर्पडालाथा और इन बौद्ध जैनोंने भीसर्पही बतायाथा परन्तु हे भगवन् ! क्या इन ब्राह्मणोंको यशदेनेके लियेही यह सर्पसे मूर्ति होगई ? इससे सिद्धहोताहै कि-मैं-जो कुछ करना चाहताहूँ उसमें तुम्हारी ही इच्छाहै (मंत्रीसे क्रोधमें होकर) मंत्री ! अबदेखते क्याहो ? दूतोंकोबुलाकर इन चांडालोंकी मुशकें बँधवाओ इनको यहांके यहीं मरवादो घसीटो २ इनको मेरे नेत्रोंके सामनेसे घसीटकर लेजाओ (दूत आकर सबकीमुसकें बाँध कर भीतरको खचेड़ेहुए लि-येजातेहैं,फिर परदेके भीतर बड़ा हाहाकारहोताहै और धड़ाधड़ तोपोंका शब्द होताहै तथा अनेकों जैनबौद्ध मारेजाते हैं)।

मंत्री-(हाथजोड़ेहुए आगेजाकर) श्रीमहाराजकी आज्ञा के अनुसार सबको दंड देदियागया।

राजा-(आनंदके साथ) किस२ को क्या२दंडदिया ।

मंत्री-पृथ्वीनाथ ! सुनिये बौद्धकिशोर, अमरसिंह, कवि-कंठपाश और जैनेन्द्रकिशोर आदि जो बड़े २ तीनसौ पंडित इस सभा में रत्नजटित सिंहासनों पर बैठतेथे उनको तोपके मुखसे बाँधकर एकसाथ उड़ादिया, शेष सातसौ पंडित जो सोनेके सिंहासन पर बैठतेथे उनको सूलीपर चढ़ादिया तथा औरजो बहुतसेथे उनमेंसे कितनोंहीको फाँसीदेदी और कितने ही का शिरश्छेदन करादिया , एवं नगरमें के सकल बौद्ध जैनों को दंड देनेके लिये दूत भेज दियेहैं और उनको दंड देने का काम बराबर होरहा है ।

राजा-(प्रसन्न होकर) हा दुष्टों ! तुम को उचितही दंड मिला ।

मंत्री-श्रीमहाराज ! अब क्या आज्ञा है ?

राजा-सेतुबंधरामेश्वर से लेकर हिमालय पर्यन्त, इधर

पूर्वसमुद्रसे पश्चिम समुद्र पर्यन्त बौद्ध जैनोंकी स्त्रीहों, बालक हों, बूढे हों, तरुणहों, सबोंको बेखटक पकड़कर यमराजका अतिथि बनादो, यही मेरी आज्ञा है और राज्य में ढँढोरा पिटवादो कि—जो बौद्ध जैनों को आश्रय देगा उसका कुटुंब निर्मूल करादिया जायगा 'चाहे सर्प को छोडदो परन्तु बौद्ध जैनोंको न छोडो' ऐसी आज्ञा लिख मुहर लगाकर सर्वत्र भेजदो

मंत्री—जो आज्ञा श्रीमहाराजकी। (ऐसा कहकर जाता है)

राजा—मुनिवर ! आपकी कृपासे मैं इन नीचों के संग से छूटगया। कहिये आगे को अब और क्या आज्ञा है ? ।

भट्टपाद—राजन् ! जबतक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तबतक तुम्हारी कीर्त्ति रहेगी, अब मैं मंडनमिश्र की सहायता से कर्म कांड की प्रवृत्ति करूंगा, अब हमारे कार्य में कोई विघ्न नहीं करसकेगा, अच्छा तो अब मैं जाता हूँ (ऐसा कहकर सब ब्राह्मणों के साथ उठकर खड़े होते हैं) ।

राजा—(उठकर नमस्कार करके) महाराज ! इस दासानुदास के ऊपर अनुग्रह बनाए रखिये ।

भट्टपाद—राजा तेरे ऊपर तो सर्वेश्वर परमात्मा का ही अनुग्रह है, नहीं तो यह यश क्योंकर मिलता, अच्छा, अब हम जाते हैं, आप बैठिये (ऐसा कहकर सब के साथ चलने लगते हैं) ।

राजा—मैंभी आपको पहुंचाने के लिये राजद्वारतक चलताहूं।

(ऐसा कहकर सब जाते हैं) ।

—०—

तृतीय—अङ्क ।

प्रथम—दृश्य—केरल देशका एकग्राम ।

(भोजन से निबटकर डकारें लेतेहुए शिवगुरु का प्रवेश)

शिवगुरु—(पेटपर बायाँ हाथ फेरकर)

आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महाबलः ।
अगस्त्यस्य प्रसादेन भोजनं मम जीर्यताम् ॥

(ऐसा कहकर आसन पर बैठते हैं) हे जगदीश्वर ! इस ब्रह्माण्ड को रचने वाली आपकी माया बड़ी प्रबल है ! इस संसार में आप किसी को सुखी नहीं रखते हैं, जिनको विद्या है उनको अन्न नहीं है, जिनको पूरा २ अन्न वस्त्र प्राप्त है उनको विद्या नहीं है । हे परमेश्वर ! इस त्रिलोकी में आप के सिवाय दूसरा कोई सुखी नहीं है, मेरे पास पूरी २ सम्पत्ति है, विद्या है और स्त्री भी सुन्दरी सुशीला चित्त के अनुकूल वर्त्ताव करने वाली है, परन्तु वंशको चलाने वाली सन्तान नहीं है, यह चिन्ता मेरे सब सुखोंको नष्ट करके शरीर को भी झुलसाये देती है; यह देखो वह चम्पकवदनी भोजन से निवटतेही मेरे लिये ताम्बुल का पात्र लारही है, हे शिव ! इस चन्द्रवदनी के मुख को भी तो पुत्रकी चिन्ता ने पीड़ित करडाला है ।

(हाथ में पानों का डब्बा लिये हुए विशिष्टा आती है)

शिवगुरु—आओ प्रिये! क्या इतने ही में भोजन जीमलिया ? मुझको प्रतीत होता है तू पेटभर भोजन भी नहीं करती है (इतना कह हाथ पकडकर समीप बैठाते हैं) ।

विशिष्टा—(नीचे को मुख करके) नाथ ! स्त्रियोंको भोजन जीमने में देरही कितनी लगती है ?

शिवगुरु—प्रिये ! मैं समझता हूँ, पुत्रचिन्ता की समान दूसरा कोई रोग नहीं है, चिता से चिंतामें एक बिन्दु अधिक ही है, यही कारण है कि-चिता तो मरे हुए को भस्म करती है परन्तु चिंता जीतेहुए को ही निरन्तर जलाती रहती है ।

विशिष्टा—प्राणनाथ ! यह चिंता अकेली मुझको ही नहीं

आपको भी दुःखित रखती है ! मैं ऊपर दिखाती हूँ और आप हृदय की हृदय में ही रखते हैं, बस इतना ही अन्तर है ।

शिवगुरु–प्रिये ! सत्य कहती है, यही दशा है !, सन्तान के विषय में पुरुषों को स्त्रियों की समान अधीर होना शोभा नहीं देता है, परन्तु मैं सत्य कहता हूँ कि–मुझको भी धीरज नहीं है, क्योंकि–वेद कहता है-पुत्रहीन की परलोकमें सद्गति नहीं है, और अब सन्तान होने की तो कुछ आशा ही नहीं है; व्रत जप आदि सबही कुछ कर छोडा परन्तु मनोरथ पूरा नहीं हुआ इसकारण अब मेरे चित्त में तो वैराग्यसा होरहा है सो मैं तो अब संन्यास धारकर परम तत्त्व का विचार करता हुआ आयु के शेष-रहेहुए दिनों को विताऊंगा ।

विशिष्टा–(खिन्न होकर) आपतो संन्यास धारकर या और चाहे जो कुछ करके अपने शरीर को सफल करहीलेंगे, परन्तु मेरी कौन गति होगी, इसकी आपको कुछ चिन्ता नहीं है ! हां ! मेरे चित्त में एक बात और आती है सुनों तो कहूं ? शिव गुरु–हां हां ! अवश्य कहना चाहिये, यदि जचेगा तो उसको भी कर देखूंगा ।

विशिष्टा–इस ग्राम में आजकल ही एक शिवजी की मूर्ति अपने आप प्रकट हुई है, उसकी बड़ी जागती कला है, सब ग्राम उस विग्रहमूर्ति का पूजन करता है,सो चलो हम दोनोंभी सब प्रपंच और घरद्वार को छोड़कर उस देव मन्दिर में रहते हुए उन शङ्कर भगवान् की भक्ति करें और यह अटल प्रतिज्ञा करलें कि–मनोरथ पूरा हुए विना घर को नहीं जायँगे और अन्न जल भी नहीं करेंगे, ऐसे नियम में यदि प्राण भी जाते रहेंगे, तो कुछ चिन्ता नहीं क्यों कि–दूसरे जन्म में तो पुत्रहीन नहीं होंगे, आगे जैसी आप की इच्छा हो ।

शिवगुरु-ठीक ठीक, बहुत ठीक है, परन्तु प्रिये तुमसे यह साधना होना कठिन है, क्यों कि-एक दिन का भी निराहार होने पर तुम अशक्त होजाओगी, उठना बैठना भी कठिन होजायगा, इस कारण तुम घरको सम्हालो और मैं शिवालय में जाकर तपस्या करता हूं।

विशिष्टा-प्राणनाथ! आप ऐसा विचार न करें, इस विषय में मैं आप से अधिक दृढ़ हूँ, मेरी कुछ चिन्ता न करिये, मैं तो पहिलेही निश्चय करचुकी हूं, इस कारण किसी प्रकार घर नहीं रह सकती, आपकी इच्छा हो तो घर रहजाइये,।

शिवगुरु-अच्छा तो (परदे की ओर को देखकर) कौन हैरे? (इतना सुनतेही सुबुद्धि नामक शिष्य आता है)।

सुबुद्धि-गुरुजी! क्या आज्ञा है?

शिवगुरु-देखो भैया!' हम दोनो! देवमन्दिर में जाकर तप करेंगे, इस में हम को जितने दिन लगें तबतक घरकी सब देखभाल तुम्हारे ऊपर छोड़ते हैं, देखो प्रतिदिन देवालय में जाकर हमारी सुध लेते रहना और अग्निहोत्र की व्यवस्था ठीक रखना।

सुबुद्धि-(हाथजोड़कर) महाराज! यह दास हरसमय आज्ञा पालन करनेको तयार है।

शिवगुरु-जरा पञ्चाङ्ग तो ला, देखूं आजका दिन कैसा है

सुबुद्धि-लाया महाराज! (ऐसा कहकर भीतर जाताहै और पञ्चाङ्ग लाकर शिवगुरु के हाथ में देताहै)

शिवगुरु-(पञ्चाङ्ग देखकर) अरे वः आज तो बुधवार में अनुराधा नक्षत्र होनेसे अमृतसिद्धियोगहै, प्रिये! चलो आज ही देवमन्दिर में चलकर नियम का आरम्भ करें।

विशिष्टा-मैंतो तयारही हूँ (ऐसाकहकर सब जातेहैं)।

—०—

द्वितीय दृश्य—भूलोक—मायापुरी।

(चारों ओर अन्धकार छारहा है)।

(गम्भीरनाद से माया बैठी है और उसके सन्मुख प्रारब्ध खड़ी है)

माया—(ऊंची सांस लेकर) हे प्रारब्ध! इस अनन्त संसारमें तू धन्य है, भूतलपर तेरी लीला की बलिहारी हूँ।

प्रारब्ध—मैया! तेरी कृपा के बिना मेरी क्या शक्ति है? मैया! भला मैंकौन कार्य करसक्तीहूँ? जिस शक्ति के प्रभाव से मैं त्रिलोकी में विजय पातीहूँ उस शक्ति की मूल तो तूही है अरी मा महामाये! तेरी कुछएक चेष्टा से ही अनन्त संसार मोह में पड़ा है, जगत् भर कठपुतली की समान तेरे अधीन है।

माया—अरीप्रारब्ध! मैंतो बड़े जंजाल में पड़रही हूँ रक्षा पानेका कोई उपाय नहीं दीखता, एक ओर तो ब्रह्माजीकी आज्ञा, कि—ज्ञानामृत पीकर पात्र अपात्र सब मुक्त हों, परन्तु दूसरी ओर देखतीहूँ तो ऐसा होने से मङ्गल नहीं है, यदि संसार में दुःख नहीं होता तो सुखका आदर कौन करता? जीव के लिये तो सुख दुःख दोनो ही चाहियें, नहींतो संसारकी मर्यादा कैसे रहसकती है इसीकारण कहतीहूँ कि—यह सदाके नियम टूटने पर न जाने क्या फल होगा!

प्रारब्ध—मैया! तू इच्छामयी है, जो इच्छा करेगी वही सिद्ध होगी, अब क्या मैं ब्रह्माजीसे यह सब निवेदन करदूँ?

माया—हाँ! उनसे कहना कि—जगत् भर के पूर्ण ज्ञान पानेपर संसारकी सृष्टि करना ही निरर्थक होजायगा, क्योंकि ज्ञान और अज्ञान दोनोंही होनेसे संसार ठहर सकता है, जैसा कि पहिले से चलाआताहै, हाँ श्रीशङ्कर के प्रभावसे इतना विशेष होना चाहिये कि—ज्ञानकी वृद्धिहो, उसके प्रकाश में महापापी भी मोहान्ध नेत्रोंको खोलकर अपनी दशा को देखें।

प्रारब्ध--मैया! जो तुम्हारी आज्ञा, अच्छा तो अब मैं जाकर यह सब समाचार ब्रह्माजी को सुनाती हूं।

माया-मैं आशीस देती हूं।कि--तेरा मनोरथ सफल हो।

प्रणाम करके प्रारब्ध का जाना और दूसरी ओरसे पाप को बढाने वाले काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद और मात्सर्य का भयानक वेश में नाचते गाते हुए आना]

सदागाइयेपाविजयमातमाया। कृपाकोरसेजिसकीवलहमनेपाया।
हैंमायाकीसन्तानहमसब सुखारी। रचैंहमसदाजगमेंजंजालभारी।
सभीजीवशङ्कितरहैंहमसेनिशदिन। हमारेनचायेनचैंपलघड़ीछिन
अटलराज्यमाया के में हमहैं राजा।प्रजासबहमारीकरैंकामकाजा।
होमायाकीजगमेंसदाजय२। कहो मिलकेभाईसदाजयसदाजय।

काम--यह क्या मातः! आज तुमको खिन्न क्यों देखरहाहूँ! आज ऐसी दशा क्यों है?मैया क्या मेरे प्रभाव को भूलगई?मैं काम हूँ-अपना और अधिक परिचय क्या दूँ, तूजानती ही है, सब जीव मेरे खेलने के खिलोने हैं, क्या मेरे काम में कुछ ढिलाई हुईहै?

क्रोध--सकल भूतल मेरी मुट्ठी में है, पलभर में सारी त्रिलोकी को जलाकर खाक करसकता हूँ, ऐसा कौन है, जो क्रोध, इस नाम को सुनकर न डरता हो, भूमिपर ऐसा कौन जीव है जो मुझ से बचा हो? मेरी मूर्त्ति रक्तवर्ण है, जहां चाहता हूँ तहां ही चारों ओर रक्त बहा देता हूँ, मैया! तुझ से कौन बात छिपी है जिस का परिचय दूँ, क्या मुझ से कोई अपराध होगया है?।

लोभ--मेरी लाओ लाओ कभी पूरी होती ही नहीं, इस भूतलपर ऐसा कौन है जो मेरे चुङ्गल से बचा हो? मातः! जगत्भर के जीव मुझसे परम प्रेम करते हैं और मैं भी सदा उन

के शिरपर सवार रहता हूँ, और सबके शुभकार्यों में जैसे बनता है तैसे विघ्न डालता हूँ, क्यांमेरे किसी काममें गड़बड़ हुई है ?।

मोह–भैया ! मेरा सदा यही काम है कि सबको लाकर तेरे चक्रजालमें फँसाना, जोकोई मेरे वशमें आकर 'मैं-मेरा' यह बोली बोलने लगता है उसीके दोनों लोकों का नाश करडालता हूँ। मेरा नाम मोह है--फिर मेरे कामभी संसार में नामके अनुसारही होते हैं, ऐसा कौन जीव है कि जिसपर मेरी प्रभुता नहो ? मातः ! मेरे किसी कार्य में असावधानी हुई है क्या ?

मद--'मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ, मेरासा ऐश्वर्य भूतल पर किस का है ?' बस यही मेरा मूलमंत्र है, इस मंत्र के प्रभावसे कौनसा जीव उन्मत्त नहीं है ? और ऐसा कौन है जो मेरे वशमें नहो ? नजाने कितने राजा, रानी, पण्डित और सज्जनों को मैंने इस अहन्ता के जालमें डालकर ग्रसलिया है। मुझसे बच कर कौन पुरुष रक्षा पासक्ता हैं ? मातः ! क्या मुझसे कोई अपराध होगया है ?

मात्सर्य--'मैं बड़ा चतुर हूँ, मेरे सामने सब मूर्ख हैं, मेरी युक्ति के सामने कौन ठहर सकता है ?' बस यही मेरा तीखा अस्त्र है, बस इस अस्त्र के बलसे ही मैं बलवान् और सबों में प्रधान हूँ, भैया ! ऐसा कौन जीव है जो अपने को श्रेष्ठ न समझता हो, मनुष्य के शरीर में मेरे सिवाय दूसरा ऐसा कौन है जोकि पुरुष के मुखसे ही उसकी प्रशंसा करा देय मैं साहस के साथ दण्ड ठोककर कहता हूं कि=भूतलपर काम आदि किसीकीभी शक्तिनहीं है कि जोमेरी गति रोकदेय, मेरा तेज वेदधारी तेजस्वी कोभी हीनकान्ति करसकता है,

मातः! मैं जोरके साथ कहता हूँ कि सबमें मुख्य मैं ही हूँ, सब जीव मेरे वशमें हैं, फिर मेरे होतेहुए तू शोकसे व्याकुल क्यों होरही है? स्पष्टकहो मुझसे कोई अपराध तो नहीं हुआ है?

सब बोले–मातः! दुःखका कारण बताओ, हमसे तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती है।

माया–नहीं सुपुत्रों! तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है, इस समय मैं आत्मस्वरूप में मग्न थी और कोई बात नहीं है।

(अचानक स्वर्गीय प्रकाश होना)

काम–यह क्या! एकायकी मेरा मन भयभीत क्यों हो उठा?

सब–(आश्चर्य में होकर) यह प्रकाश कहाँ से आया? हम सबों के मन क्यों घबड़ागये?

(सबका भय मानकर चिल्लाना और काँपना)

रक्षा करो मैया! बचाओ! नहीं तो प्राणचले।

माया–कुछ भय न मानो बेटा! धीरज धरो।

थोडी ही दूर पर पुण्यका प्रचार करनेवाले–विवेक, क्षमा, सन्तोष, श्रद्धा, दया और शान्तिका प्रवेश–अचानक परदेका पलटजाना–मायारचित स्वर्ग और माया की प्रकाशमयी मूर्त्ति–कुछ सावधान होकर पापप्रवर्तक काम क्रोधादि का अत्यन्त आश्चर्य के साथ भयभीतभावसे आपसमें एक का दूसरे के ओर को देखना।

माया–(आगे को बढकर) आओ मेरे प्राणप्यारों आओ! अब मेरी इच्छा पूरी हुई।

विवेक–मातः हम सब साथी मिलकर तुम्हारी सेवा करने को आये हैं, तुम जिस के ऊपर प्रसन्न होजाती हो उस को फिर जगत् में किसी वस्तु की कमी नहीं रहती है, मैया! इससमय हम एक भिक्षा माँगने आये हैं।

माया! सुपुत्रों! तुमको किस वस्तु की कमी है? क्या चाहिये?

विवेक-मातः तुम्हारी करुणा के विना क्या होसकता है? हे चैतन्यरूपिणी ! शिवे ! शुभङ्करि ! जीवों की ओर को मुख घटाकर देखो, मैया!तुम्हारे विना शङ्कर क्या करसकते हैं?

माया-जीवों का उद्धार करने को श्रीशङ्कर ने अवतार धारा है, यह बड़े आनन्द की वात है, उस में मेरी क्या आवश्यकता है?

क्षमा-क्षमामयी शुभकारिणि ! तुम माता के विना जीवों-के ऊपर क्षमा कौन करेगा ।

सन्तोष-मातः ! आनन्दरूपिणी ! तू सदा आनन्दमयी है तेरे सिवाय सन्तोष देनेवाला दूसरा कौन है ?

श्रद्धा-चैतन्यरूपिणी मैया श्रद्धामयी ! श्रेष्ठ श्रद्धा के विना जीव कैसे रक्षा पासकते हैं ?

दया-दयावती कल्याणदायिनि मैया ! दया के विना जगत् का व्यवहार कैसे चलसकता है ?

शान्ति-मातः ! ब्रह्माण्ड में शान्तिमयी शक्ति तूही है, तेरे विना शान्तिरूप अमृत की वर्षा कौन करसकता है ।

विवेक-(कातर होकर हाथ जोड़ेहुए) हे कात्यायनि हे ब्रह्म सनातनि ! जीवोंको ज्ञानका दान देकर शीघ्रही रक्षा करो, तुम्हें छोड़ कर और कोई रक्षक नहीं है ।

माया-मैं पहिलेसेही सब जानबूझ चुकी हूँ, हे पापप्रवर्त्तक काम क्रोधादिकों ! और हे पुण्यप्रवर्त्तक विवेक क्षमादिकों ! आओ सब मिलकर एक एक करके मेरे हृदय में लीन होजाओ, आज मैं तुम को एक गुप्त बात बताती हूं, तुम दोनो कुछ भिन्न नहीं हो, परन्तु संसारी पुरुष इस बात को नहीं जानते हैं, इस कारणही काम क्रोधादि का अनादर और विवेक क्षमा आदिका आदर करते हैं,

जो महात्मा पुरुष होते हैं वह कहीं भी भेदभाव नहीं रखते हैं, परन्तु क्षुद्र पुरुषों को इस बात में सन्तोष नहीं होता है, वह अपने स्वभाव के अनुसार सबको भेदभाव से देखते हैं परन्तु वास्तव में भूमण्डल पर पाप-पुण्य कोई भिन्न वस्तु नहीं है, क्यों कि-रचना के क्रम से एक में सेही दो प्रकट होजाते हैं और उन दो में वह एकही व्याप्त रहता है, परन्तु भ्रम में पड़ा हुआ जीव इस बात को नहीं समझता है इस कारणही झन्झट करता है, जो पुरुष तुम दोनो में भेदभाव समझता हैं उससे कभी सुविचार की आशाही नहीं, जो महात्मा पुरुष हैं वह पाप और पुण्य को एक दृष्टि से देखते हैं उनके लिये यह संसार ही स्वर्ग होजाता है, परन्तु ज्योंही उनके मनमें भेदभाव आताहै त्योंही अशान्ति और डाह आकर उनके मन पर अधिकार जमालेतेहैं, पाप पुण्यमें भेदभाव रखनाही मन में विकार उत्पन्न करदेता है, वह मनोविकार ही पुरुषके लिये नरकसमान दुःखका भण्डार है, हे मेरे प्रिय पुत्रों ! इसके सिवाय और कुछ नहीं है, यह सब बुद्धिका खेल है, तुम सब एकहो इसकारण सब मिलकर आओ और मेरेहृदय में स्थान पाओ, मैं तुम सबोंका एकसमान आदर करूँगी तुम सब अपने२ कर्तव्य का पालन करो।

(अचानक घोर अन्धकार का होना)

(गम्भीरस्वरसे)ॐ: ! यह सब वही चमत्कार है !—जब सारा ब्रह्माण्ड अन्धकार में था सब जगत् की सामग्री भेदाभेदहीन एकाकार थी, आदि में चराचर कोई नहीं था, न पृथ्वी थी, न चन्द्रमा-सूर्य—और तारागणों की अनन्त रचना थी, जीवों की धर्माधर्म प्रवृत्तियें भी नहीं थीं, था एक अनन्तरूप से व्याप्त में घोर अन्धकार, उस समय एकाएकी दिव्यप्रकाश आया

और उसने अन्धकार को दूर किया था-मैं वही तो हूँ इस समय भी तो मैं ही हूँ ।

[इतने ही में परम प्रकाश का होना-आकाश मार्ग- अत्यन्त नीला स्थान-एक साथ प्रकृति और पुरुष [शिव पार्वती] की मूर्त्तिका प्रकट होना]

-मैं वही तो हूँ कहाँ है मेरी नगरी ? और कहाँ हैं पापप्रवृत्तियें तथा विवेक आदि पुण्यप्रवृत्तियें ?, क्या बात है जो कहीं कुछ भी नहीं दीखता है ? यह क्या-यह तो सब एकाकार हो रहे हैं?

(अचानक अन्तर्धान होना)

[आकाश में अदृश्यरूप से देवताओं का स्तुति गाते हुए फूल बरसाना]

जय रूप-गुण-वर्जित निरञ्जन, नित्य आनँद मय जय !
जय आदि-अन्त-विहीन शङ्कर, शुद्ध ज्योतिर्मय जय !

—o—

द्वितीय दृश्य ।

[सुबुद्ध और सुलोचन दो विद्यार्थियों का प्रवेश]

सुलोचन--क्यों मित्र सुबुद्ध ! आज क्या बात है जो ऐसे घबड़ाये हुए से जारहे हो ?

सुबुद्ध-वाः ! क्या तुमने नहीं सुना ? हमारे गुरुजी के पुत्र हुआ है, बारह दिन हुए नामकर्ण संस्कार भी होगया, आज इष्ट मित्रों की जीमनवार होगी, उसी के सामान की ठीक-ठाक में लगरहा हूँ ।

सुलोचन-(आश्चर्य में होकर)हाँ ! क्या यह बात सत्य है? वाः यह तो बहुत अच्छा समाचार सुनाया, विचारी विशिष्टा पति सहित बहुत दिनोंसे पुत्रकी आशा लगाए हुए शिवजी की आराधना कररही थी, ईश्वर ने शीघ्रही उसकी सुनली ।

सुबुद्ध--अरे भाई ! आराधना क्या ! अन्त में हमारे गुरु जी और गुरुमाताजी दोनों शिवालय में ही जाकर रहनेलगे

थे, और निराहार रहकर उन्होंने तहाँ बड़ा उग्र तप किया तब शिवजी ने प्रसन्न होकर कहाकि-' कुछ चिन्ता न करो, मैं ही तुम्हारे यहाँ पुत्ररूप से अवतार धारूँगा।

सुलोचन--वाः! फिर यह क्यों नहीं कहते कि—इन ब्राह्मण कुलशिरोमणि के यहां साक्षात् कैलासनाथ ने ही अवतार धारा है तो क्या उस बालक में कुछ अलौकिक चिन्ह भी है

सुवृद्ध--भाई! वृत्तंत क्याहो, उस बालक को देखते में आँखे चौंधानेलगती हैं, उसके जन्मसमय में पांच ग्रह ग्यारहवें स्थान में थे, उत्पन्न होतेहुए जब गुरुजी ने जातकर्म संस्कार किया उस समय बड़े बड़े ज्योतिषी आये थे उन्होंने जो उस बालक का जातक सुनाया उसमें कहा था कि-" यह बालक अवतारी पुरुष है, तथा चारों वर्णों के धर्म की स्थापना करके यह जगत् भर में प्रधानता पावेगा और उपनिषदादि वेदान्त वाक्यों की उत्तम व्याख्या करता हुआ दिग्विजय करेगा।"

सुलोचन—अच्छा यह तो बताओ कि—उस अवतारी पुरुष-का जन्म किसदिन हुआथा?

सुवृद्ध—भाई! जब मैंने यह कहादिया कि—आज नामकर्ण को बारह दिन होगये तब भी क्या तुमको जन्म दिनका पता नहीं लगा, अच्छा तो उस पुण्यपुरुष के जन्म के विषय में एक कविने एक श्लोक बनाया है मैं तुम को वही सुनाता हूँ सुनो--

प्रासूत तिष्यशरदामतियातवत्या- मेकादशाधिकशतोन चतुःसहस्र्याम्। सम्वत्सरे विभवनाम्नि शुभे मुहूर्ते राधे सिते शिवगुरोर्गृहिणी दशम्याम्॥

अर्थात् कलिके ३८८९ वर्ष बीतनेपर विभव नामक सम्वत्सर में वैशाख शुक्ला १० के दिन मध्यान्हकाल के समय

शुभमुहूर्तमें शिवगुरु की स्त्री विशिष्टाने शङ्कर नामक पुत्रको उत्पन्न किया।

सुलोचन--भाई! इस समयतो तुमने मुझको आनन्द के समुद्र में मग्न करादिया, प्रतीत होता है अब आगे आगे को आनन्ददायक समाचारही सुननेमें आवेंगे, परसों वेदविरोधी जैनों के पराजयका समाचार सुना था और आज तुमने यह शुभसमाचार सुनाया।

सुबुद्ध--हाँ! प्रतीत तो ऐसाही होताहै कि-अब परमेश्वर की ब्राह्मणोंपर सुदृष्टि फिरी है (पीछेको देखकर) अरे! मुझे बातोंमें कुछ ध्यानही नहीं रहा अब मुझे जानेकी आज्ञा दो,क्योंकि वह देखो पण्डित लोग इकट्ठे होहोकर गुरूजी के यहाँ भोजन पानेको जारहे हैं, मुझको बड़ा विलम्ब होगया गुरूजी मेरे आने की बाट देखरहे होंगे, क्योंकि जबतक मैं यह पत्तले लेकर न पहुँचूंगा तबतक भोजनका प्रारम्भ नहीं होसक्ता।

सुलोचन--हाँ हाँ! ठीक है, शीघ्रजाओ, मैंभी जाता हूँ, अच्छा नमोनमः। [ऐसा कहकर दोनोंजाते हैं]

तृतीय दृश्य बगीचा।

[कईएक बालकोंके साथ बालकरूप शङ्कराचार्य का प्रवेश]

शंकर- देखोभाई! कैसे सुन्दर फूल खिलरहे हैं, मानों सारे बगीचे में चाँदनी छिटक रही है।

एक बालक- आओ भाई! इन फूलोंको तोडकर माला गूंथे।

शङ्कर--नहीं भाई! ऐसा करना ठीक नहीं, है, क्या हम में ही जीव है, इन फूलों में नहीं है, जब किसीके नूचनेपर

हमारे शरीर में कष्ट होता हैं तो क्या तोड़ २ कर बांधने पर इनको कष्ट नहीं होगा ?

१ बालक-भाई ! तुम्हारी सभीबातें संसार से निराली हैं, हम मनुष्य हैं और वह पेड़ के फूल हैं, कहाँ हम और कहाँ यह ? उनकी लकड़ी पत्तों में क्या हाड़ मांस और प्राण हैं ? तुम तो भाई बड़े वहमी होगये हो !

शङ्कर-नहीं मुझको वहम नहीं है, हमारे यहाँ दो साधु भिक्षा करने को आये थे, पिताजी से उनका वार्त्तालाप होते समय मैंने उन महात्माओं के मुख से सुनाथा कि-सब चैतन्यवान् हैं, चैतन्य सब में एकरूप से व्यापरहाहै, तो भाई! यह फूल क्या सब से अलग हैं ? भाई ! एक बात औरहै उसको सुनकर तो तुम्हे हँसी आवेगी-जैसे हम बातचीत करते हैं तैसे ही-फूल फल और पेड पचेभी करते हैं, परन्तु हम उसको नहीं सुनसकते हैं, क्योंकि-हम में उसको सुनने की शक्ति नहीं है ।

२ बालक-भाई !तुम्हारी तो सभीबातें संसार से निराली हैं । कुछभी हो तुम तोड़ो या न तोड़ो, हमतो यहाँ से फूल तोड़कर माला बनावेंगे ।

शङ्कर-भाई ! विचारो तो सही माला गूथने सेही क्या फल होगा ? दो चार घड़ी मेंही वह कुम्हलाकर नष्ट होजायगी, तब तुम उसको उठाकर फेंकदोगे, परन्तु यदि यह फूल पौधोंपर लगेरहेंगे तो पवन में कैसी सुगन्ध आवेगी और बगीचे में कैसी शोभा रहेगी ? कितनी ही मधुमक्खियें इन फूलोंका मद लेकर जीवन धारण करेंगी ?, जो इतने काम में आवेंगे, ऐसे फूलोंको केवल अपनी क्रीड़ा के लिये नष्ट करडालना क्या हमको उचित है ?

२ बालक-ओ भाई ! देखो वह सरोवर के किनारे पर बगला कैसा आँखमीचे बैठा है, आओ हम सब मिलकर इसके ढेलेमारें, यदि इसको पकड़लेंगे तो छोटे भैया के खेलने के लिये लेचलेंगे । (ढेला मारने का उद्योग करते हैं) ।

शङ्कर-नहीं नहीं भाई ! यह क्या करते हो ? यदि तुम को ऐसाही ऊधम मचाना है तो लो मैं तो घरको जाताहूँ! हाय ! हाय ! कैसा सुन्दर पक्षी है, भला इसने तुम्हारी क्या हानिकरी है जो इसको मारना चाहते हो, यदि कोई तुम कोभी इसीप्रकार निरपराध सतावे तो कैसा कष्ट होगा, जरा विचारो तो सही ?, भाई जिस ईश्वरने हमको रचा है उसीने इस पक्षीको भी उत्पन्न किया है, फिर तुम इसको वृथा कष्ट क्यों देतेहो ? ।

२ बालक-भाई ! तुम तो बड़े डरपोक हो ।

शङ्कर-तुम मेरे लिये परमेश्वर से प्रार्थना करो कि- मैं सदा ऐसाही डरपोक बनारहूँ ।

१ बालक-भाई शङ्कर ! परमेश्वर कौन है ?

शङ्कर-यह सारी पृथ्वी जिनकी है, जिन्होंने संसार के सब पदार्थों को रचा है, जिन्होंने हमको भी मनुष्य का जन्म दिया है, जो हरसमय हमारी रक्षा करते हैं, और जो परमदयालु, अपक्षपाती और पाप पुण्य के विचारकर्त्ता हैं वह अनन्तदेव ही परमेश्वर हैं ।

३ बालक-अच्छा भाई शङ्कर ! यह तो बताओ, तुम बीच २ में नेत्र मूँदकर क्या विचारते हो ?

शङ्कर-भाई ! विचारता यह हूँ कि-"मैं कौन हूँ, यहाँ कहाँ से किस लिये आया हूँ, अब आगेको कहाँ जाऊंगा, और इस संसार में मुझको करना क्या चाहिये ?" इनही सब

बातों का तत्त्व जानने की मुझको बड़ी उत्कण्ठा रहती है।

१ बालक—चलोभाई अब सब घरको चलें सायङ्काल होगया।

२ बालक—हाँ भाई! अब घरको चलना चाहिये, नहीं तो पिताजी चिल्लावेंगे।

३ बालक—चलो शीघ्र चलो, और मार्ग में ज़रा वह परसों वाला भजनभी अलापते चलो।

(आगेर शंकराचार्य और पीछे सब बालक भजन गाते जाते हैं)

रहोगे मन! कबलों माया माँहि ॥ टेक ॥
आँख खोलि देखहु मन नीके, कोई काहूको है नाहिं।
मानत जिनहिं आपनो यह सब, स्वारथहित लपटाहिं ॥१॥
मात पिता भ्राता सुत दारा, झूठे स्वजन लखाहिं।
समय पडें कोई काम न आवे, पाप पुण्य सँग जाहिं ॥२॥
जो प्रभु विपत हरत निज जनकी, करुणासिंधु कहाहिं।
सुमर तिनहि कर नेह तिनहिंसों, सब दुख द्वन्द सिराहिं ३
रामस्वरूप निरखि निज हिय में, संशय सकल मिटाहिं।
खुलै गाँठ हियकी ताही छिन, कर्महु सकल बिलाहिं ॥४॥

—०—

चतुर्थ दृश्य।

(एक ओर से बड़बड़ाते हुए विदूषक और दूसरे ओर से सूत्रधार का आना)

सूत्रधार—(आगे को देखकर) कहो मित्र विदूषक जी! अभी तो तुम जीते हो?

विदूषक—मैं तुम्हारी आखों में क्यों खटकता हूँ? मेरे मरने का डौलतो होही गया था परन्तु शीघ्रही सावधान होजाने से बचगया।

सूत्रधार—भला मैं अभी किसी सरकारी सिपाही से कहदूँ कि—यह वेदनिन्दक नास्तिक जैन है तो वह अभी तुझ को भी तेरे ढपोलशंख गुरुके पास पहुँचादेय?।

विदूषक-(आँख भौं चढ़ाकर) अबे मुह सम्हालकर बोल! किसको जैन कहता है ? क्या तेरी आँखों पर पट्टी बँधी है, मेरे गले में पड़ाहुआ यह लंगर क्या नहीं दीखता है ? (ऐसा कहकर गले में का जनेऊ दिखाता है ।)

सूत्रधार-(हँसकर) देखलिया२, तूतो वर्णसङ्करों का भी बाबा बनगया, रोज २ गिरघट की समान रंग बदलता है, अरे ! पहिले तो ब्राह्मण था, फिर मिष्टान्न के लोभ से जैनी होगया और अब मरने की पारी आई तो फिर ब्राह्मण बन-गया ? शाबास भाई शाबास ! (ऐसा कहकर कमर ठोकताहै)

विदूषक-अरे भाई ! परमेश्वर के लिये ऐसी बातें न करो तुम जानो या मैं जानूँ, और हाथ धोकर मेरे प्राणों के पीछे ही पडे होओ तो और बात है ।

सूत्रधार-अच्छा यह तो बता, इस महासङ्कट से तू बचा कैसे ?

विदूषक-उसदिन तो मैं तुमको मिलाही था, फिर दूसरे दिन मैं ग्राम के देवालय में अजगर की समान अचेतसा पडा रहा, इतने ही में दशपाँच सिपाहियों को साथ लिये जमादार आया, और उसने एकायकी सिपाहियों से हमारे गुरुजीको बचेबचाये शिष्यों सहित मुश्कें बँधवाकर बाहर निकलवाया तब मैं घबडाकर, हाथ में का मोरछल तहाँ ही फेंक और गले में जनेऊ डालकर राम राम कहता हुआ बैठगया ।

सूत्रधार-हाँ ! की तो बडी चतुराई, अच्छा फिर ?

विदूषक-फिर सिपाहियों ने उनको धकियाकर बाहर नि-काला और राजाकी आज्ञा सुनाकर एक एक के दो दो करही तो डाले, यह देखकर तो मेरे देवता कूंच करगये, ईश्वरने बड़ी कृपा की भाई, सिपाही मेरे ऊपर कुछ सन्देह न करके

ज्योंही तहाँ से टरके कि-मैं चम्पत हुआ, तब से इसी मोहल्ले में आनन्दसे गुजरतीहै, परन्तु यार कहीं किसीसे कह न देना।।

सूत्रधार-देख तू मौत के मुख से बचा है, परन्तु अबभी निश्चय हुआ या नहीं ? अब तो-"स्वधर्मे निधनं श्रेयः" "मरण श्रेष्ठ निजधर्म में" इस भगवत्-वाक्य पर विश्वास रखकर धर्माचरण कर।

विदूषक-हां भाई ! टक्कर लगकर ही अकल आती है ! अब चाहे जोकुछ हो, सनातन वैदिक धर्म को कभी नहीं छोड़ूंगा, परन्तु हां एक बात भूलही गया ! मैं आज कल बड़े चैन में हूं, मेरा विवाह भी होगया ?

सूत्रधार-अरे क्या ठीक कहरहा है ? कहां दांव लगा ?

विदूषक-ठीक क्या, बहुत ठीक कहरहा हूं, दांव लगने की आप क्या बूझते हैं, इस फक्कड़ की अकल क्या ऐसी वैसी समझी है ? माहिष्मती नगरी में एक मण्डनमिश्र नाम वाले पण्डित हैं, वह संन्यास को बड़ा बुरा समझते हैं, यह तो तुमने सुनाही होगा, अब उन्होंने अपना यह नियम कररक्खा है कि-जिसकिसी संन्यासी को देखते हैं उसी को शास्त्रार्थ में जीतकर विवाह करादेते हैं, मैंभी यह बात सुनतेही अपना काम साधने के लिये संन्यासी बनगया और उनके नगर में गया, तहां कितनेही पण्डित मेरे पास आकर कहने लगे कि-" शास्त्रार्थ कर " परन्तु तुम ज़ानतेही हो हमारे लिये तो काला अक्षर भैंस की समान है, फिर मैं शास्त्रार्थ के लिये गरदन हिलाने को छोड़ और उत्तरही क्या दे सकता था, ? मेरे ना करतेही उन्होंने मुझे जबरदस्ती पकड़कर मेरे गेरुआ कपड़े उतारकर स्वेत वस्त्र पहिराये और उसी समय एक तरुणी स्त्री के साथ मेरा विवाह करदिया, कहिये कैसा वर आवाद किया? वाह रे मैं !

सूत्रधार-भाई ! काम तो तूने बडी चतुराई का किया, अच्छा फिर आज किधर को धावा है ?

विदूषक-ऐसेही टहलता टहलता चला आया हूं, वह इस मौहल्ले में एक श्रीमान प० शिवगुरु रहते हैं ना, आपने नहीं सुना क्या ? उनके एक शङ्कर नामक पुत्र हुआ था सुना है। आज उसका यज्ञोपवीत होनेवाला है, ईश्वर ने कृपा की तो तहां दो चार दिन कचौड़ी पूरियें उड़ावेंगे, फिर मैंने विचारा कि-घर एक जने के लिये क्या चूल्हा बलेगा, इसी लिये गठ जोड़ से जारहा हूँ।

सूत्रधार-अरे ! अब तहां जाकर क्या करेगा, अभी थोड़ी देर हुई सब कार्य होचुका, मैं तहां से निवटकरही आरहा हूं

विदूषक-(भौंचक्का सा होकर) तो क्या यह मेरा इतना मार्ग नापना वेकारही गया, अच्छा यह तो कहो तहां जाने पर दक्षिणाभी मिलेगी या नहीं ?

सूत्रधार-छिः अरे मूर्ख ! कहां दक्षिणा लेकर बैठा है। वह विचारी अपने दुःख सेही खाली नहीं ?

विदूषक-दुःख कैसा ? क्या हुआ ?

सूत्रधार-अरे ! उन शिवगुरु महाराज का देवलोक होगया ना ! इस बात को कहते हुए भी कष्ट होता है, देखो विचारे कैसे विद्वान् थे कैसे मिलनेवाले थे ! हा ! थोड़ी ही अवस्था में, ऐसे श्रेष्ठ पुत्र का कुछभी सुख न भोग कर चल वसे, हे ईश्वर ! यह तेरा बड़ा अन्याय है ?

विदूषक-अररर ! यहलो मेरी तो दक्षिणा ही डूबगई, हा ! यह बड़ा वज्र टूटा ?

सूत्रधार-भाड़में जाय तेरी दक्षिणा, ऐसेही लोभियों ने ब्राह्मणों की निन्दा करारक्खी है, हाँ आज शिवगुरु होतेतो तुझको मुहमांगी दक्षिणा देते ।

विदूषक-तोफिर उनके घरके और तो सब जीते हैं या मेरी दक्षिणा के कारण सभीका परलोक होगया ?

सूत्रधार-अरे ! कैसा अमङ्गल बोलरहा है ? तुझे बात करनाभी नहीं आता, घरके सभीलोग हैं और ईश्वर उनकी उमर बढ़ाकर सदा ऐसाही सुखी रक्खे (परदेकी ओर को देखकर) अरे ! वह देख, शिवगुरुकी स्त्री सती विशिष्टा इधर कोही आरही है, शिव ! शिव ! इस विचारीके विधवावेष को देखनेसे तो मेरेचित्त पर चोटसी लगती है, चल भाई ! अब यहाँ खडा होने से कष्टहोता है।

(ऐसा कहकर दोनों जाते हैं)

पञ्चम दृश्य ।

(विधवा वेषधारणी विशिष्टा का प्रवेश)

विशिष्टा-(बडे कष्टसे नीचे बैठकर माथेपर हाथ रक्खे हुए) जगदीश्वर ! जैसा तेरे मनमें आताहै, तू उसीप्रकार मनुष्य को नचाता है (लंबासांस लेकर) नरकवास से भी अधिक कष्ट देनेवाले रँडापे का परम दुःख भोगने को मैं क्यों जीतीरही पतिके साथही इस संसारसे उठजाना ठीक था, परन्तु क्या करूँ इस बालक शंकरकी रक्षा कौन करेगा ? इस माया के जाल में फँसकर वह सुखभी हाथ ले गया, अरेरे ! मैं इतना भी न समझी कि- ईश्वर किसीके बिना किसीकी भी अटकी नहीं रखता है, यदि ऐसा न होता तो उसको, विश्वम्भर या जगदीश नाम से कौन पुकारता ? (कुछ विचार कर) खैर जो कुछ हुआ, अब पछताने से भी क्या फल है ? जिस के कारण उस सुख को भी तिलाञ्जलि दी, उस के ऊपर दृष्टि रखकर समय को बिताना ही अब अच्छा है (चौकन्नासी होकर) मेरे शंकर में हरएक गुण

अद्भुत है, थोड़ीसी उमर में कैसे गंभीर विचार, कैसी बड़प्पन की बातें ! मानो पहिले जन्म का ही सीखा हुआ जन्मा है, ऐसी कौन बात है–जिसको मेरा शङ्कर नहीं जानता है ? परसोंही यज्ञोपवीत हुआ है, सर्वथा, पुस्तक में लिखेहुए ब्रह्मचारी के नियमों को पालरहा है, न जाने आज भिक्षाके लिये कहां चलागया है, दुपहर ढलनेलगा, धूपमें पैर तचते होंगे !

(इतने ही में परदे के भीतर से 'भवति भिक्षां देहि मातः' ऐसा शब्द हुआ)

विशिष्टा–(सुनकर) मालूम होता है बच्चू आगया ।

(तदनन्तर ब्रह्मचारी के वेश में शंकराचार्य आते)

शङ्कर–मैया ! यह भिक्षा कहां रक्खूं ?

विशिष्टा–बेटा ! उधर ही रखदे (शंकराचार्य भिक्षाका‑पात्र रखते हैं) बेटा ! रोज रोज भिक्षाके निमित्त क्यों जाय है ? घरमें क्या कमी है ?

शङ्कराचार्य–मैया ! क्या मैं घर में कमी होने से भिक्षा करने को जाता हूँ ? मातः ! ब्रह्मचारियों का धर्म ही यह है कि–भिक्षाके अन्न का भोजन करके गुरु के घर वेद पढे, दिन में सोवे नहीं, सवारी पर चढ़े नहीं, ताम्बूल न खाय, ऐसी शास्त्र की आज्ञा होने से ही मैं उसके अनुसार वर्त्ताव करताहूँ।

विशिष्टा–(गोदी में लेकर) बेटा ! इतनी बातें किसने सिखाई हैं ? (ऊंचा सांस लेकर) ईश्वर ! ऐसे सद्गुणी पुत्र का सुखभोगे विना ही उनको क्यों बुलालिया ? (नेत्रों में के आँसू पोंछकर) बेटा ! अब मेरी यह इच्छा है कि–समयानुसार तेरा विवाह होकर तेरे दोचार सन्तान होजायँ तो मेरे सब मनोरथ पूरे होजायँ ।

शङ्कराचार्य–मैया ! क्या मेरा विवाह करने को कहरही है ? छिः छिः यह झगड़ा तो मैं कभी भी नहीं पालूँगा , मातः !

इस में क्या रक्खा है, संसार के सब पदार्थ मिथ्या हैं, फिर सांसारिक भोगकी साधन स्त्री से भी सुखकी क्या आशा ?

विशिष्टा--अच्छा तो फिर तू क्या करेगा ? सदा हाथ से ही ठेके खायगा ?

शङ्कराचार्य--मातः ! मेरी संन्यास लेने की इच्छा है, बस तेरे आज्ञा देने की ही देर है।

विशिष्टा--अरे ! क्या यही तेरा चतुरपन है ! मैं जो तुझको बडा सुजान समझ रही हूं क्या उसका यही फल है ? अरे ! तुझको यह दुर्बुद्धि किसने सिखाई है ? बेटा ! इतनी ही अवस्था में संन्यास लेकर क्या इस सब घर बार को मट्टी करेगा ? (ऊंचा सांस लेकर) अरे ! इस कुलका सहारा भी तो अकेला तूही है !, यदि फिर आगे को मुख से ऐसे अक्षर निकाले तो मैं कहीं जाकर अपने प्राण खोदूगी, तब मेरे जाने चाहे जो कुछ करता रहियो।

शंकराचार्य--(मनमें) यह अज्ञानरूप अंधेरे में पडी है, संन्यास लेन की आज्ञा कभी भी नहीं देगी, इस लिये अब दूसरे प्रकार से काम साधना चाहिये कुछ सोचकर (प्रकट रूप से) नहीं मातः ! मैं तो हँसी में कहरहा था, देखता था कि--तू क्या उत्तर देगी।

विशिष्टा--(फिर गोदी में बैठाकर) नहीं बेटा ! ऐसी बातें नहीं करते हैं, देख सब संसारी सुख को ही चाहरहे हैं, विवाह के अनन्तर तेरे दो बालक होजायँ तो मेरी आँखें मिचे पीछे बुढ़ापे में चाहे जो कुछ करना।

शंकराचार्य--जाने दे मातः ! अब उस बात को बढाने काही कौन प्रयोजन है ? जिस मार्ग को जाना ही नहीं उसके कोस क्या गिनना ! अब मेरे मध्यान्ह स्नानका समय होगया और

तिसपर भी आज एकादशी है, इसकारण मैं मैं स्नान करने को नदीपर ही जाता हूं।

विशिष्टा-नहीं बेटा! घर में ही शीघ्रता से स्नान करके भोजन पा ले, नदीस्नान तो रोज होताही रहता है।

शंकराचार्य--अरी! देर नहीं लगेगी, गया और एक गोता लगाकर आया।

विशिष्टा-अच्छा तो बहुत देर जल में न रहना, शीघ्रही आना, यदि देर लगाई तो फिर कभी नहीं जानेदूंगी।

शङ्कराचार्य-अच्छा, गया और आया (ऐसा कहकर जाते हैं)

विशिष्टा-मेरीलाट कितनी मानता है, मेरे माँ चढातेही घबड़ा जाता है, न जाने इसको यह संन्यास लेने के लिये किसने बहकादिया है? (विचारकर) हाँ समझगई, जिस पाठशाला में पढ़ने जाता है यह सब तहाँका ही प्रसाद है, मैं अब उस पाठशाला में ही जाना बंद करदूंगी, बस मैं इतनी ही विद्या से भरपाई, अब मैं उसको घरके कामकाज में डालूंगी, जिससे अपने पराये को समझे।

(इतनेही में रोताहुआ मुकुन्द आता है)

विशिष्टा-(घबड़ाकर) अरे! रोता क्योंआया है? अरे यह क्या दशा होरही है? अरे! तेरे कपडे कैसे भीजे हैं? क्याहुआ, बताता नहीं?

मुकुन्द-(काँपता २) च. च. च. च. चाची, मैं और श श. शङ्कर नदीपर स्नान करनेको ग. ग. गये थे, वहाँ स्नान क. क. करते में श. श. शङ्करका पैर बडभारी ना. ना.नाके ने पकड़लिया मैंने उसको छु. छु. छुड़ानेमें बहुत से उद्योग क.क. करे,प.प.परन्तु उसने नहीं छो. छो.छोड़ा,तब मैं तत्काल

इधरको दौ. दौ. दौ. दौडा आरहा हूँ श. श. शङ्कर पानी में खडा रो. रो रो. रोरहा है, ज. ज. ज. जल्दीचल।

विशिष्टा--(छातीको मसोसकर) हे ईश्वर ! मेरे ऊपर यह कैसा सङ्कट डाला ? अब मुझे मेरा पुत्र नजाने देखनेको भी मिलेगा या नहीं ? मैंने तो पहिलेही कहीथी कि तहाँ डूबने को मत जा, अरे ! चलतो सही देखूँ कहाँ है, (कमर पकड के उठकर) अरे ! यह सुनकर तो मेरी कमरही टूटगई।

[ऐसा कहकर दोनो दुःखित होतेहुए जाते हैं]

षष्ठ दृश्य--

सुलोचन--(आपही आप) क्या करूं, कितनेही दिन होगए मित्र सुबुद्ध का दर्शनही नहीं हुआ। इसी लिये मैं अपने आपही आज इधर आया हूं, परन्तु उसका अभीतक कुछ पताही नहीं, नजाने क्या बात है !

[इतने ही में उदास हुआ सुबुद्ध आता है]

सुलोचन--(उसको प्रेम के साथ हृदय से लगाकर) मित्र ? आज तुम ऐसे उदास क्यों होरहे हो, तुम तो सदा प्रसन्नमन रहते थे, आज यह नई बात क्यों है ?

सुबुद्ध--क्या कहूं मित्र ! आज मेरी सबही आशाएँ स्वप्न सी होगई, सदा के सुख का समूल नाश होगया,

सुलोचन--भाई ! यह क्या कहरहा है ? सब वृत्तान्त स्पष्ट रूप से सुना तो सही, क्योंकि--अपना दुःख मित्र को सुनाने पर कुछ कमही होता है।

सुबुद्ध--गुरुजी के परलोकवासी होनेका समाचार तो तुम सुनही चुके होओगे ?

सुलोचन--हां हां भाई ! सूर्य का अस्त होना किस को मालूम नहोगा।

सुबुद्ध–आज उनका पुत्र और मेरा मित्र साक्षात् शिवा-वतार शङ्कर भी हमको छोड़कर चलागया (ऐसा कहकर रोताहै)

सुलोचन–भाई ! यह क्या कह रहा है ! 'छोडकर चलागया' इस सन्देह भरी बातको सुनकरतो मेरी छाती फटी जातीहै कैसे २ हुआ, सब बात स्पष्टरूप से सुना ।

सुबुद्ध–क्या कहूँ ! वह भगवान् जगदाधार हमें मिलेंगे क्या अरे मित्र ! उन के चित्त में संन्यास लेने की थी इसकारण उन्हों ने एकदिन अपनी माता से संन्यास लेने की आज्ञा मांगी थी परन्तु माता ने आज्ञा दी नहीं, इसकारण जब आज हम दोनों स्नान को गये थे तब माया का नाका बनाकर उससे अपनी टाँग पकडवाली और यह लीला दिखाकर आप रोने लगे ।

सुलोचन–फिर क्या हुआ ?

सुबुद्ध–फिर मैंने दौड़ते हुए जाकर सब वृत्तान्त गुरु माताजी को सुनाया, वह तत्काल ही रोती हुई तहां पहुँचीं और अपने पुत्रको गहरे जल में नाके का पकड़ा हुआ देख कुछ वश न चलने से अतिविलाप करने लगीं ।

सुलोचन–अच्छा अब पहिले यह बताओ कि–नाके ने शङ्कर को छोड़ा भी या नहीं ?

सुबुद्ध–सब बताता हूँ सुनो, फिर माता को देखकर शङ्कर जलमें से ही कहने लगा–मातः ! अब मेरे प्राण बचना कठिन हैं, परन्तु हाँ ! यदि इस समय तू मुझको संन्यास लेने की आज्ञा देदेगी तो कदाचित् मेरे संन्यास धारण का सङ्कल्प करते ही पुनर्जन्म होकर बचगया तो बचही गया.

सुलोचन–वाः अच्छी युक्ति रची, अच्छा फिर ?

सुबुद्ध–फिर वह भोली भाली माता–" यदि आज्ञा नहीं

देती हूँ तो हाथ में आया हुआ पुत्र रत्न जाता है' ऐसे कठिन चक्र में पड़ी हुई, कोई उपाय न सूझने से पागलसी होकर टकटकी लगाये चारों ओर को देखने लगी ।

सुलोचन--हा ! कैसा कठोर अवसरथा, भाई ! उस समय उसके चित्त पर जो वीती होगी, उस का ध्यान करने से भी शरीर पर रोमाञ्च खड़े होते हैं ।

सुवुद्ध--तदनन्तर अपनी माताको पुत्र मोह के कारण कुछ उत्तर न देकर, मौनहुई देखकर उन भगवान् परम विरक्त ममता शून्य शङ्कर के नेत्रों में से भी आँसू वहने लगे, परन्तु उस समय उन्होंने आँसुओं को रोक कर--"माता जो कुछ उत्तर देना हो शीघ्र दे, अव मुझसे नाके की पीणा नहीं सहीजाती, ऐसा कहकर वह माया को चलाने वाले चीख मारकर रोये।

सुलोचन--हा ! ममता की फाँसीको काटना वडा कठिन है, अच्छा फिर ?

सुवुद्ध--फिर उसने "यह मेरा पुत्र संन्यासीहोकर ही जीता रहे, ऐसा कहकर, हाथ में जल लेकर संन्यासी होने की आज्ञा देदी ।

सुलोचन--अच्छा फिर नाके से छुटकारा कैसे हुआ ?

सुवुद्ध--भाई ! इसके लिये ही तो शङ्करने अपने आप यह कपट रचा था, माता के आज्ञा देते ही न कहीं नाका था न कुछ! वह उसी समय जल से वाहर आकर माता के पास खडा होगया ।

सुलोचन--अच्छा अव मेरा चित्त ठिकाने आया ! हाँ तो उस कष्ट से छूटने के अनन्तर क्या हुआ ?

सुवुद्ध--फिर माता ने "मैं तो नहीं जानेदूँगी" यह हठ की तव उसको ज्ञानोपदेश करके और मरणके समय तेरेसमीप अवश्यआऊँगा ऐसा कहकर, तथा घरके सव पदार्थ भाई

बन्धुओं को सौंप माताकी व्यवस्था उनसे कहकर संन्यास धारण करने को चलागया (आँखें भरकर) भाई ! अब मुझे तो किसीका भी आश्रय नहीं रहा ।

सुलोचन--भाई ! तेरी और शंकर की तो मित्रता थी, फिर तूने उससे अपने विषय में वातचीत क्यों नहीं की ?

सुबुद्ध--नहीं जी, ऐसा कैसे होसकता था, उस समय जब मैं अधीर होकर रोने लगा तो मेरे पास आकर मुझ को समझा कर कहा कि-मैं संन्यास लेकर काशी में आऊंगा तब तू भी आकर मुझ से मिलना तो तेरा उद्धार करूँगा ।

सुलोचन--तब तो तू काशी को जाने वाला ही होगा ? मैं भी साथ चलने के लिये अभी आता हूँ, ऐसे पुण्यपुरुष के सहवास की समान दूसरा कौनसा सुख होसकता है ?

सुबुद्ध--भाई ! मैं तो अब दो घड़ी बाद ही यात्रा करने वाला हूँ, यदि तुझ को साथ चलना हो तो शीघ्रही आजा ।

(ऐसा कहकर दोनों जाते हैं)

सप्तम दृश्य

स्थल हिमालय पर्वत ।

(तदनन्तर आसन पर बैठेहुए पूज्यपाद गोविन्दाचार्य स्वामी का प्रवेश)

गोविन्दस्वामी-नारायण, नारायण (ऐसा कहकर आपही आप) कल समाधि के समय जगदीश्वर की यह आज्ञा हुई थी कि--कल को जो शिष्य आवे उसकोही आश्रम का भार सौप देना, परन्तु अभीतक तो यहां कोई आया नहीं ।

[इतने ही मैं शंकराचार्य आते हैं]

शङ्कराचार्य--(आपही आप) मैंने माता की आज्ञा के घर से निकल कर अबतक अनेकों वन पहाड़ों को लांघते २

आज इस हिमालय पर जाकर गुरुजी की गुफा का पता पाया है, उस तपस्वी ने जो पहिचान बताई थी, वह तो इस गुफा पर दीखरही है, वस वह परमयोगीजी महाराज इसी गुफा में होंगे. (ऐसा कहकर और कुछ पग आगे बढ़कर) धन्य धन्य यहीहै वह गुफी, वह देखो मेरे गुरु योगीजी महाराज वैठे हैं, अच्छा तो अव चरणों में प्रणाम करके अपने जन्म को सफल करूँ।

(ऐसा कहकर समीप आ चरणों पर मस्तक रखते हैं)

गोविन्दस्वामी--नारायण नारायण, अरे वावा तू कौन है

शंकराचार्य--पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों महाभूतों से निराला मैं आत्मा हूं।

गोविन्दस्वामी- वाः! यह तो उत्तम अधिकारी मालूम होता है, हे वेटा! तेरा नाम क्या है?

शङ्करा०--हे सत्गुरो! इस पंचमहाभूत के शरीरका नाम शङ्कर है।

गोविं०--धन्य शङ्कर! वता तेरी क्या इच्छा है? और इस किशोर अवस्था में ही यहाँ तपोवन में क्यों आया है।

शंकर०--महाराज! मैं संसार के तापों से वडा पीडित हो रहा हूं, इसकारण संसार दुःख को दूर करने वाले संन्यास आश्रम को पाने की इच्छा से श्रीचरणों का आश्रय लिया है, आशा है श्रीमान् मेरे इस मनोरथ को पूरा करेंगे।

गोविं०--(हँसकर) तू कहतो यह तो सत्य है परन्तु तेरा यह वैराग्य अधिक दिनोंतक नहीं ठहरसकेगा, क्योंकि-भोग आदि करके इन्द्रियों की तृप्ति हुए विना वह इन्द्रियें कदापि वश में नहीं होसकतीं, इस कारण अभी तेरी अवस्था संन्यास आश्रम को धारण करने की नहीं है।

शंकरा०-इन्द्रजाल विद्या के प्रभाव से होनेवाले चमत्कार

को देखने से बालकों को मोह होता है, परन्तु यह इन्द्रजाल है ऐसे समझने वाले तरुण पुरुष उसको देखकर मोहित नहीं होते हैं, तैसे ही इन मिथ्या इन्द्रियों से सत्य विकार होही कैसे सकता है ? इसकारण श्रीमान् की कृपा होयगी तो मैं इन्द्रियों के मोह में कदापि नहीं फँसूँगा ।

गोविं०--अस्तु, तू कौन है, यह मैंने जान लिया, अच्छा अब मैं तुझको उपदेश देने के लिये अभी उद्यत हूं परन्तु तू भागीरथी के घाट पर जा और मुंडन कराकर शीघ्र ही लौट-कर आ ।

[तदनन्तर श्रीशङ्कराचार्य जी परदे के भीतर जा फिर लौटकर आते हैं]

शङ्करा०--महाराज ! श्रीमान् की आज्ञानुसार मैं मुंडनके काम से निबट आया ।

गोविं०- अब इन वस्त्रोंको धारणकर(ऐसा कहकर गेरुआ वस्त्र धारण करवाते हैं) दाहिने हाथ में इस दंड को धारण कर (ऐसा कहकर दंड देते हैं इस के द्वारा काम क्रोध आदि शत्रुओं का दमन करना चाहिये, अब दाहिना कान इधर को कर, क्योंकि--तत्त्वोपदेशक मंत्र का उपदेश देता हूं(ऐसा कहकर शङ्कराचार्य जी के कान में उपदेश करते हैं) अब ऊंचे स्वर से ' नारायण ' शब्द का उच्चारण कर ।

शङ्कर०--(ऊंचे स्वरसे) नारायण, नारायण, नारायण

गोविं०--अब तुझ को इस आश्रम के धर्म सुनाता हूं सुन--एक ग्राम में तीन रात से अधिक न रहना, रजस्वला स्त्री का मुख देखने पर उस दिन निराहार व्रत करना, धन इकट्ठा न करना, सवारी पर न बैठना, इस प्रकार धर्म का आचरण करते हुए रात दिन ब्रह्मतत्त्व का विचार करते रहना, और जो मुमुक्षु पुरुष हों उन को उपदेश देकर उ-द्धार करना केवल चौमासे में चार पक्ष अर्थात् दो महीने

तक एक ग्राम में रहना, चौमासे के दिनों में तीर्थयात्रा के लिये न जाना।

शंकरा०—आज्ञा के अनुसार ही वर्त्ताव करूँगा, इस शिष्य के ऊपर श्री गुरु चरणों की पूर्ण कृपा रहना चाहिये।

गोवि०—तू मेरा मुख्य शिष्य है, तेरा "भगवत्पूज्यपादाचार्य" यह इस आश्रम का नाम रखता हूँ, अब तुझ से गुरुपरम्परा कहता हूँ, सुन—प्रथम अद्वैत के मूल आचार्य श्रीव्यास भगवान् थे, उन के शिष्य श्री शुकदेव जी हुए, उन के श्री गौडपादाचार्य और उन का मैं तथा मेरा तू (भगवत्पूज्यपादाचार्य) है, अस्तु, तू साक्षात् शंकर है, मनुष्य शरीर को धारण करने पर उस के अनुसार ही लीला करनी चाहिये, इस कारण तू ऐसी लीला कररहा है, यह बात मैं स्पष्टरूप से जानता हूँ।

शंकरा०—आप सर्वज्ञ हैं, ऐसी कौन बात है जिस को आप न जानते हों?

गोवि०—हे मेरे प्यारे भगवत्पूज्य! अब तू मुमुक्षुओं का उद्धार करने के लिये पृथ्वी पर विचर।

शंकरा०—हे सद्गुरो! मेरी यह इच्छा है कि- इन हाथों से कुछ दिनों गुरुसेवा हो, अभी मुझे आश्रम में ठहरने की आज्ञा दीजिये।

गोवि०—बहुत अच्छा, आनन्दित रहो, अब मैं मध्यान्हकाल की संध्या आदि करने के लिये श्रीभागीरथी के तट पर जाता हूँ, (ऐसा कहकर गुरु शिष्य दोनों जाते हैं)

—:※:—

अष्टम दृश्य।

[भगवान् शङ्कराचार्य का प्रवेश]

शङ्करा०–(आपही आप) मैंतो गुरु महाराज की आज्ञा लेकर इस पुण्यक्षेत्र काशीपुरी में आया हूँ, अब इच्छानुसार यहाँ की सत्वगुणी सम्पत्ति को तो देखलूँ, आहा! यह भागीरथी का जल कैसा स्वच्छ है, (जल पीकर) आहा! जल में तो अमृत केसा स्वाद है, धन्य है इस गङ्गाजल का पान करने वाले यहाँ के निवासियों को धन्य है! (गोता लगाकर) अच्छा मैं स्नान से तो निवट ही गया अब भगवान् विश्वनाथ जी के दर्शन करने को जाना चाहिये (ऐसा कहकर चलने का उद्योग करते हैं)

(तदनन्तर चाण्डाल के वेष में भगवान् विश्वनाथ जी का प्रवेष)

विश्वनाथ- आज मेरा मुख्य कार्य परिव्राजक शङ्कराचार्य की परीक्षा करना है, देखूं नाशवान् जगत् के भयानक मायाचक्र में दुर्दमनीय इन्द्रियरूप शत्रुओं को इन्होंने कैसा वशमें करा है! और इस अनन्त जगत् को अब किस दृष्टि से देखते हैं! आज देखता हूं यह जगत् भरके घृणापात्र चाण्डाल के साथ यह कैसा व्यवहार करते हैं, अच्छा मार्ग के वीचोवीच में खड़ा होजाऊं (ऐसाही करते हैं!

शङ्करा०–(सामने को देखकर आपही आप), छिः छिः मार्ग में चाण्डाल खड़ा है! अच्छा आपत्ति में पड़ा, कहां तो मैं गङ्गास्नान कर पवित्रहो भगवान् विश्वनाथकी पूजा करने के विचार में था, परन्तु अब क्या करूं इसने तो मार्ग रोक रक्खा है, (ऐसा कहते हुए दो पग आगे बढ़कर) हर हर! यह कैसा अमंगल चाण्डाल है, हाथ में मांस का पात्र है, साथ में चार कुत्ते हैं, शरीर की दुर्गन्ध यहांतक आरही है,

शिव ! शिव ! इस की तो छाया से भी बचना चाहिये, (ऐसा कहकर एक ओर को बचकर चलने लगते हैं)।

(चाण्डाल वेषधारी विश्वनाथ ऊपर को ही आते हैं और शङ्कराचार्य सटपटाते हैं)

शंकरा०—अरे भाई ! जरा बचकर चल, ऊपर को क्यों चढ़ाआता है ? क्या तुझको कुछभी ज्ञान नहीं है ? जराबचकर चल, क्या मुझको छूहीलेगा ?, मुझे देर हुईजाती है, गङ्गा स्नान करके विश्वानाथ का पूजन करने को जारहा हूँ,

चाण्डाल—(कहने को कुछ न सुनकर धकादेता हुआजाता है)

शंकरा०—(नाक भौं चढाकर) अरे रे ! देखो दुष्टने छूही लिया ना ? अब मुझको फिर स्नान करना पड़ेगा, मुझको छूने से तुझको क्या मिला ? हटने के लिये इतना कहा एक नहीं सुनी।

चाण्डाल—हटने को किससे कहा था ?

शंकरा०—तुझसे ही कहा था और किससे कहता, यहाँ और कौन है ?

चाण्डाल—मुझसे कहाथा या मेरे शरीर से ?

शंकरा०—तुझसे कहाथा या तेरे शरीर से कहाथा यह भी समझ में नहीं आया ?

चाण्डाल—मुझसे कहने से तो लाभही क्या ?

शङ्करा०—भाई ! तू चाण्डाल, नीच जाति है, अब मुझे फिर गङ्गास्नानरूप प्रायश्चित्त करना पड़ेगा !

चाण्डाल—(हँसकर) यह तो बता तू है कौन ?

शङ्करा०—मैं उस ब्राह्मणजाति का हूँ, जिसको चाण्डाल का स्पर्श होनेपर स्नान करना चाहिये।

चाण्डाल-अरे ! तू जाति से ब्राह्मण है या गुणों से ?

शङ्करा०—पदार्थ उसके गुण कभी अलग २ होकर ठहर

ही नहीं सकते, इस कारण यदि मैं ब्राह्मण हूँ तो उसके गुण भी मुझ में हैं ही अतएव मैं जाति और गुण दोनोंही से ब्राह्मण हूँ ।

चाण्डाल--तबतो तुझको 'ब्राह्मण' इस पदका अर्थ ज्ञात होना चाहिये ।

शङ्करा०--हाँ हाँ ! जानता हूं--रूढ माननेपर ब्राह्मण पद एक वेदोक्त अनादि सिद्ध जातिका वाचक है और यौगिक मानाजाय तो ब्राह्मण शब्दका पदार्थ- 'ब्रह्मजानातिब्राह्मणः' अर्थात् जो ब्रह्मको जाने वही ब्राह्मण है, ऐसा होगा ।

चाण्डाल--तू अर्थ जानता है परन्तु उसके अनुसार वर्त्ताव नहीं करता, यदि तुझको ब्राह्मण शब्द के पदार्थ का अनुभव होता तो तू अपने मुखसे ऐसी अट्टसट्ट बातें न निकालता !

शङ्करा०--'मुझको मत छू' इस वाक्य में तुमने क्या अ-ट्टसट्ट देखा ?

चाण्डाल--अरे ! मूढ ! जो तुझको छूरहा है, वह 'मत छू' इस कहने को समझता नहीं है और जो समझता है उसको छूने और न छूने से कुछ सम्बन्ध ही नहीं, तिसी प्रकार 'मुझे मतछू' ऐसा जो कहता है वह छुआही नहीं जाता है और जिस शरीर को स्पर्श होता है उसको स्पर्श के विषय में भले बुरे का कुछ ज्ञानही नहीं है, क्योंकि--वह जड़ है, गङ्गाजल में गोवर पड़ने से क्या गङ्गाजल का माहात्म्य जाता रहता है ? जो सूर्य की किरणें स्वच्छ गङ्गाजल में पड़ती हैं वही यदि अपवित्र मद्यके भरेहुए पात्र में पड़ें तो क्या ? सूर्य की पवित्र नष्ट होकर किरणों में नीचभाव आसकता है ? तैसेही आकाश की समान व्याप्त जो आत्मा उसकी दृष्टि में ब्राह्मण और चाण्डाल में कुछ भेद नहीं है, क्योंकि--मेरे प्राणोंका प्राण--अनन्त ब्रह्माण्ड व्यापी निर्विकार सच्चि-

दानन्द जो ब्रह्म या मेरी हृदय रूप गुहा में स्थित आत्मा क्या तुम्हारे पूर्णज्योतिर्मय परमात्मा से भिन्न है ? यदि कहो कि--तेरा यह चाण्डाल शरीर अपवित्र है तो इसका उत्तर यह है कि--क्या मेरा यह देह--पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतों का रचाहुआ नहीं है ?, यह जड़ शरीर पवित्र हो चाहे अपवित्र हो, इसमें आत्मा का क्या जाता आता है ? इस नाशवान् जड़ शरीर का कर्म भोगरूप कार्य समाप्त होतेही यह अपने मूल कारण पञ्चमहाभूतों में जा मिलेगा, तब मुझमें और तुममें कुछभी भेद नहीं रहेगा, इस आत्मा का कोई एक स्थान नहीं है, यह तो सर्व व्यापक है, इस सब तत्त्व पर ध्यान देकर जरा विचारो कि- मेरे शरीर से घृणा करके वचना तुमको कहांतक उचित है, इस कारण हे यतिजी ! देह दृष्टि से मैं तुम्हारा दासहूं, जीव दृष्टि से तुम्हारा अंश हूं और आत्मदृष्टि से जो तुमहो वही मैं हूं। इसकारण बाहर अभेद दृष्टिका ढोल वनाकर भीतर से ऐसे भेद भावका आचरण करनेवाले को ब्राह्मण न कहकर पशु कहना क्या परम उचित नहीं है।

शङ्करा०--(आपही आप) यह चाण्डाल नहीं है, क्योंकि चाण्डाल समान नीच के मुखसे तो ऐसी पवित्र वाणी और सद्विचार निकल ही नहीं सकता अतः यह चाण्डाल के वेश में कोई दिव्य पुरुष हैं (प्रकाशरूप से) जीव और ब्रह्म दूध और जलकी समान मिले हुए हैं उन में से हंसकी समान ब्रह्मरूप दूध को अलग करके ग्रहण करनेवाला कि--जिस की ऐसी अभेद वुद्धि होजाय वह चाहे चाण्डाल हो, चाहे यवनहो तथा जाति से परमनीच हो तब भी वह मेरा प्रणाम योग्य गुरु है। (ऐसा कहकर चाण्डाल के चरण छूने को

झुकते हैं उसी समय भगवान् विश्वनाथ चाण्डाल का वेष त्यागकर प्रत्यक्ष मूर्त्ति से प्रकट होते हैं और चाण्डाल अन्तर्धान होता है)।

विश्वनाथ- हे मेरे अंश शंकराचार्य ! उठो, तुम मेरे अवतार पूर्णहो या नहीं ? यह परीक्षा करने के निमित्त मैंने यह वेष रखकर तुमको स्पर्श किया था, अस्तु तुमने मुझको पहिचान लिया, इसकारण मैं प्रसन्न हूं।

शंकरा०- ऊपर को उठ सन्मुख साक्षात् विश्वेश्वर को देख और प्रणाम करके) हे भगवन् ! पार्वती प्राणवल्लभ ! चराचर गुरो ! मैं आपकी परीक्षा में कैसे पार पासकता हूं? हिलोरें लेते हुए भयानक समुद्र में जैसे प्रचण्ड जलकी तरङ्ग एक के पीछे दूसरी चली आती हैं तैसे ही इस संसारसमुद्र में तुम्हारे वश में रहने वाली जो माया तिसकी तरङ्गें आती जाती हैं वह बड़े२ तत्त्वज्ञानियों के छक्के छुटा देती हैं, फिर मेरी तो बात ही कौन है ? जिसके ऊपर आपकी कृपा है केवल उसका ही वह माया कुछ नहीं करसकती है, सो हे भगवन्! इस संसार सागर में रहने वाले जो कामादि क्रूर पशु हैं उन का मथन करने के लिये मेरे पास आपका कृपा खड्ग होना चाहिये।

विश्वनाथ—हे शंकर ! तुम यह क्या कहते हो मेरा तो चित्त ही तुम्हारे वश में है फिर उस चित्त में रहने वाली कृपा हो इस का तो कहना ही क्या ?

शंकरा०--आपजो कुछ कहते हैं यह सब सत्य है, क्योंकि देहदृष्टि से मैं आपका दासानुदास हूं, जीव दृष्टि से मैं आप का अंश हूं तथा आत्मदृष्टि से मैं साक्षात् आपरूप ही हूं।

विश्वनाथ- धन्य ! शङ्कर ! तुम धन्यहो, जैसे व्यासजी

साक्षात् नारायण हैं तैसे ही तुम भी मेरे प्रियहो ! जव २ धर्म की ग्लानि होकर अधर्म की वृद्धि होती है तव २ ही मैं इसी प्रकार का अवतार धारकर धर्मकी रक्षा करता हूं। अस्तु, अव तुमको जो कुछ करना चाहिये सो कहता हूं, सुनो--श्रीव्यासजी ने सव श्रुतियों का सार उपनिषदों के द्वारा वर्णन किया है, उसका मूढ पंडित अनेकों कुतर्क करके अर्थ के स्थान में अनर्थ कररहे हैं,उन सवका जिसमें खण्डन हो ऐसा उपनिषदों के ऊपर वेदान्त भाष्य वनाओ, फिर कर्म काण्डको ही सर्वोपरि मानकर उसी में मग्न रहने वाले मंडनमिश्र को जीतकर दिग्विजय करो और द्वैतवादियोंको जीत ब्रह्म द्वैतमत की स्थापना करके जगद्गुरु की पदवी पाओ, अव मैं अन्तर्धान होकर निजधामको जाता हूं।

शंकरा०--(नमस्कार करके) भगवन् ! आप विद्या के भण्डार हैं, आप चाहे जिससे चाहे जो कार्य करवासकते हो, मैं आज्ञानुसार सव कार्य करने को उद्यत हूं, परन्तु मेरे रचेहुए भाष्य को देखकर शुद्ध करने के निमित्त एकवार फिर भी दर्शन होना चाहिये।

विश्वनाथ--तुम्हारा भाष्य पूर्ण होनेपर, साक्षात् व्यास जी ही तुमको मिलेंगे और वही शुद्ध करेंगे, अस्तु, अव मैं जाता हूं।

[ऐसा कहकर अन्तर्धान होते हैं]

शङ्करा०--आहा हा ! आज साक्षात् भगवान् विश्वनाथ का दर्शन हुआ इसकारण मेरा आत्मा प्रसन्न होरहा है, अव उनकी आज्ञानुसार वर्त्ताव करने में प्रवृत्त होना चाहिये।

[ऐसा कहकर जाते हैं]

——०——

तृतीय अङ्क।

प्रथम–दृश्य।

(कैलास पर्वत पर आसन पर बैठी हुई लक्ष्मी और पार्वती का प्रवेश)

लक्ष्मी--सखि पार्वती! परसों मैं तुझसे मिलने को आई थी तब तूने एक बात चलाई थी, परन्तु वह आधी ही कहकर छोड दी थी और बाकी की फिर कहुंगी" ऐसा कह दियाथा, आज मैं उसबातके ही सुननेको आई हूं अब मुझे बता फिर आगे को क्या २ हुआ?

पार्वती–ऐसी कौनसी बात थी? सखि! मुझेतो स्मरण रही नहीं।

लक्ष्मी–अरे! तेरे स्वामीने मृत्युलोक में अवतार धारकर बडे२ चमत्कारिक काम करने प्रारम्भ करदिये हैं उनका समाचार क्या तू मुझे नहीं सुनावेगी? ऐसी रुठाईतो नहीं चाहिये।

पार्वती–(हँसकर) हाँ हाँ! वह बात! परन्तु यहतो बता मैं ने तुझको कहाँतक सुनाई थी!

लक्ष्मी–सखि! तुमारे स्वामी ने अपनी मृत्युलोक की माता को धोखा देकर उससे संन्यास के विषय में आज्ञा ली थी, वह यहाँ तक ही सुनाई थी, अब आगेका वृतान्त बता!

पार्वती--अरी! मुझेभी यहाँ ही तक मालूमथी, फिर आगेको क्या हुआ यह बात अभी तक मैंभी नहीं जानसकी हूं।

लक्ष्मी- ऐं ऐं क्या? तूने कहाथा मैं फिर सुनाउंगी इस कारण मैंतो वडी आसा करके आईथी परन्तु तूने योंही टरका दिया ना!

पार्वती--थोडी देर थम, आगे को क्या क्या हुआ सो सब बता दूंगी, इसी का पता लगानेके लिये मैंने दो गण भेजे

हैं, वह आतेही होंगे, बस उन के मुख से सब सुन लेना

तदनन्तर तुण्डी नामक शिवजी का गण आता है।

तुण्डी--(समीपमें आकर) माताजी! मैं दोनो के चरण कमलों को मैं तुण्डी प्रणाम करताहूं (ऐसा कह कर प्रणाम करता है),

पार्वती और लक्ष्मी--चिरायु हो, सकल कल्याण मिलें।

पार्वती--अरे तुण्डी! तू अकेला ही आया और वह भृंगी कहाँ है?

तुण्डी--माताजी! आप के कथनानुसार हम दोनों भूलोक में गये और तात महाराज की लीला प्रत्यक्ष देखने के लिये, किसी को न दीखने वाले अदृश्यरूप से उन के पीछे ही खडे रहे, उस समय जो कुछ देखा वह सब निवेदन करने को ही मैं चला आरहा हूं, और आगे को क्या होता है यह देखने के लिये भृंगी को तहां ही छोड आया हूं।

पार्वती--हाँ तो संन्यासके विषयमें माता से आज्ञा लेकर फिर क्या लीला हुई वह सुना?

तुण्डी--माताजी! ध्यान देकर सुनो- संन्यास ग्रहण करने केलिये माताकी आज्ञा मिलतेही अकेलेही वन और झाड़ियों को लाँघते हुए चलेगये, परन्तु कोई गुरु न मिले तब परम चिन्तामें पड़कर ईश्वरकी स्तुति करतेहुए हिमालयकी तलैटी में जो घना वन है तहाँ निराश होकर बैठगये।

पार्वती--क्या पृथ्वीभर में कोई दीक्षा देनेवाला संन्यासी ही नहीं मिला।

तुण्डी जगदम्बे! सुनो- माहिष्मती नगरीमें एक मण्डन मिश्र नामक कर्मठ है उन्होंने ऐसा ऊधम मचारक्खा है कि जिस संन्यासी को देखते हैं उसीको शास्त्रार्थ में जीत कर

विवाह करादेते हैं, इस भय से सब संन्यासी छुपेहुए रहते हैं ।

पार्वती-अच्छा तो फिर आगे क्या हुआ ?

तुण्डी-तात महाराज उसवनमें बैठगये और अनन्यमन से ईश्वर का ध्यान करने लगे, उसी समय उनको यह शब्द सुनाई आया कि इस हिमालयकी गुफामें एक महायोगी गोविन्दपूज्यपादाचार्य नामक स्वामी हैं उनसे संन्यास की दीक्षा लो ।

पार्वती-(हँसकर)सखि लक्ष्मि ! खूब रूप बनाया होगा! अच्छा फिर क्या हुआ ?

तुण्डी-फिर उस गुफाको ढूँढने हुए हिमालय पर गये, तहाँ कितनेही ऋषियोंने उस गुफाकी पहिचान बताई, उसी के अनुसार गुफाको ढूँढकर गुरु गोविन्द पूज्य से मिले और संन्यासकी दीक्षा ली ।

पार्वती-(मुख विसूरकर)फिर क्या हुआ ?

लक्ष्मी-सखि ! तूने मुख क्यों विसूरा ?

पार्वती-हाँ लक्ष्मि ! तू हँसी नहीं उड़ावेगी तो कौन उड़ावेगा ! (गणसे) फिर क्या हुआ ?

तुण्डी-फिर उसी आश्रम में गुरुसेवा करने के लिये कितनेही दिनों रहे,सेवा करते समय तात महाराज ने बड़े२ चमत्कार किये ।

पार्वती-वह क्या ? शीघ्र सुना .

तुण्डी-सुनिये-एकदिन स्वामी गोविन्दपूज्यजी गङ्गा के तटपर समाधि लगाये बैठे थे और गङ्गाजीका गं गं प्रचण्ड शब्द होरहा था, उस शब्द से गुरुजी की समाधि में विघ्न पड़ता समझकर तात महाराज ने सारी गंगाको अपने कमण्डलु में भरकर गङ्गा का प्रवाहही बंदकर दिया ?

पार्वती--जिन्होने गंगाको अपने जटाओं में विन्दुकी समान होकररक्खा है उनको कमण्डलु में छिपालेना कौन कठिन है? अच्छा फिर ?

तुण्डी--यह बात ज्ञात होते ही गुरुजी ने तात महाराज से कहा कि--गुरुसेवा पूर्ण होगई, अब तुम अवतार का कार्य पूरा करने को जाओ, इतना कहकर एक कथा सुनाई.

पार्वती--वह कथा कौनसी थी ?

तुण्डी--उन्होने कहा कि--एक समय मैं ब्रह्मसभा में गया था, तहाँ मेरे आदिगुरु व्यासजीभी आये थे, तहाँ प्रसङ्गानुसार यह बात चली कि--व्याससूत्रों पर भाष्य होना चाहिये, तब--" गोविन्दपाद के शिष्यों में से जो गंगाप्रवाह को कमण्डलु में भरलेगा वही मेरे सूत्रों पर ठीक २ भाष्य रचेगा " यह बात व्यासजी ने कही थी, इस कारण अब तुम काशी में जाकर उपनिषदोंपर और व्याससूत्रों पर भाष्य रचो, गुरुजी की यह आज्ञा पातेही तात महाराज काशी को चलेगये।

तुण्डी--काशी में आकर क्या चरित्र किया, वहभी सुना ?

तुण्डी--काशीपुरी में आने पर पद्मपाद, आनन्दगिरि आदि को उपदेश देकर शिष्य बनाया और जोकोई संसार रोगसे दुःखित होकर शरण आते हैं उनका उद्धार करने के लिये तात महाराज आजकल काशी में ही ठहरे हुए हैं, अब आगे को क्या होताहै, उस को जाननेके लिये भृङ्गी को तहाँ छोडकर मैं श्रीमती के चरणों में वृत्तान्त निवेदन करने को चलाआया हूँ (ऐसाकह प्रणामकर मौन धारे हुए बैठता है)

पार्वती--सखीलक्ष्मि! सुनलिया, अब आगे का पता भृङ्गी के आने पर लगेगा।

लक्ष्मी-सखि! महान् पुरुषों के चरित चाहे जितने सुने चले जाओ तृप्ति नहीं होती है, अच्छा आजतो मैं जाती हूँ, अब कलको फिर आऊँगी।

पार्वती-अच्छा सखि! हाँ बातें करते सुनते बहुत समय होगया, अब कल जैसा होगा देखाजायगा।

(ऐसा कहकर सबजाते हैं)

—०—

द्वितीय दृश्य।

स्थल--काशीपुरी

तदनन्तर श्री शंकराचार्यजी के शिष्य पद्मपाद, आनन्दगिरि, हस्तामलक और विष्णुगुप्त आदि नारायण नारायण शब्द करते हुए प्रवेश करते हैं.

आनन्दगिर-भाई! हम बडे भाग्यवान् हैं जो ऐसे श्रीगुरु के चरणों की शरण पाई है।

पद्मपाद-पातकी नरनारियों को तारने को, पापसे दबती हुई भूमि का भार उतारने को, सत्य सिद्ध वेदवाक्यों का प्रचार करने को तथा सबको शुद्ध अद्वैत वाद से दीक्षित करनेके निमित्त साक्षात् भगवान् त्रिशूलधारी शिव ने अवतार धारा है, वही गुरुमहाराज के रूप में इस भूतल पर विराजमान हैं,किन्ही पूर्वजन्मों के पुण्य से हम को भी ऐसे पुण्यपुरुष के चरणों की शरण मिलगई है, आहा! कैसे आनन्द का सुअवसर है।

विष्णुगुप्त-मेरा मनतो गुरु महाराज के उपदेश वचनोंको सुनते हुए किसी शास्त्र के पढ़ने को भी तो नहीं चाहता, मानो वेद शास्त्र का सारभूत अमृत ही पिला देते हैं।

हस्तामलक-क्यों पद्मपादाचार्यजी! जब गुरु महाराज उत्तर मानसरोवर की यात्रा करने को गये थे तब तुमतो साथ ही थे,

यहतो बताओ तहां क्या २ चमत्कार देखे और श्रीमहाराज कहाँ हैं ?

पद्मपाद्-कोई कहने योग्य बड़ा भारी चमत्कार तो देखा नहीं, उयाके सब तीर्थों में स्नान हुआ, सब देवताओं के दर्शन हुए, शिवक्षेत्र में गये,तहाँ२श्रीमहाराज ने देवताओं का यथाविधि पूजन किया, अनकों प्रकार की स्तुति की, सार यह है कि-श्रीगुरु महाराज के साथ में यात्रा के दिन बड़े आनन्द से बीते।

आनन्दगिरि-अच्छा ! अब गुरु महाराज कहाँ हैं ?

पद्मपाद-प्रयाग में "तुम काशी को चलो, दोचार दिन पीछे मैं भी आता हूँ" ऐसा कहकर रहगये हैं उनकी आज्ञानुसार थोड़ा२मार्ग चलकर मैंतो यहाँ आपहुँचा हूँ अनुमानत श्रीगुरु-महाराज भी आज ही आते होंगे।

(इतने ही में परदे के भीतर नारायण शब्द की ध्वनि होती है)

आनन्दगिरि-भाई ! अनुमान होता है कि-श्री गुरुमहाराज आगये.

तदनन्तर कई एक शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्य जी आते हैं,और नारायण नारायण कहकर आसन पर बैठते हैं

पद्म और आनन्दगिरि-(हाथ में दण्ड धारण करेहुए यतियों के सम्प्रदाय के अनुसार प्रणाम करके नारायण नारायण शब्दका उच्चारण करते हैं)

शङ्कराचार्य--(प्रेम के साथ) क्यों सब शिष्यों कुशल तो है ना ?

आनन्दगिरि-भगवन् ! आपके कृपा कटाक्ष से सब कुशल हैं, कुछ दिनोंतक श्रीचरणों का दर्शन नहीं हुआ इस कारणही कुछ एक अधैर्यसा होरहा था. अब श्री चरणों का दर्शन होने से वह अधैर्य भी दूर होगया।

शङ्कराचार्य–हे श्रेष्ठ शिष्यों ! सूर्यास्त होने को है इस कारण अब मैं गङ्गास्नान करताहुआ भगवान् विश्वनाथ के दर्शन करने को जाऊँगा, तुम सबभी जाकर अपनी अपनी नित्यक्रिया से निवटो,

(नारायण २ कहते हुए सब जाते हैं)

—०—

तृतीय दृश्य.

काशी–मणिकर्णिका घाट

(चारों ओर शिष्य मण्डली और मध्यभाग में आसन पर विराजमान श्रीशंकराचार्यजी का प्रवेश)

शंकराचार्य–शिष्यों ! पुण्यक्षेत्र काशीपुरी में आये बहुत दिन होगये, इस कारण अब मेरी इच्छा है कि--और २ देशों में भ्रमण करूं बहुत स्थानों में गए विना संसार की दशा का पता नहीं लगसकता।

शिष्य--हम सब श्रीमहाराज की आज्ञा को स्वीकार करते हैं

शङ्कराचार्य–तुम सब मेरे शारीरक भाष्य को तो भलीप्रकार समझते ही हो ?

पद्मपाद–जब श्रीमान् के चरणों का आश्रय किया है और श्रीमान की हम सबों के ऊपर कृपा है तो फिर शास्त्रीय किसी विषय में भी अज्ञता रहना कैसे सम्भव होसकता है ?

शङ्कराचार्य--(सामनेको देखकर) यह वृद्धाब्राह्मण कौन आरहा है।

(बूढ़े ब्राह्मण के वेशमें वेदव्यासजी का प्रवेश)

वेदव्यास–महाराज ! आप कौनहो और किस शास्त्र का विचार कर रहे हो ?

आनन्दगिरि– हे द्विजवर्य ! यह अद्वैतवाद के आचार्य हम सबों के गुरु हैं, इन्होंने वेदान्तसूत्रों पर भाष्य रचा है, जिस

में अद्वैतवाद का पूरण विचार किया गया है, हम सब उसी तत्व ज्ञान को सीखते हैं।

वेदव्यास-(शङ्कराचार्य से) क्यों भैया! यह तेरे शिष्य क्या कह रहे हैं, यह कहीं पागल तो नहीं हो गये हैं? यह तुझको भाष्यकार कह रहे हैं, परन्तु वेदान्तसूत्रों पर भाष्य रचना तो बड़ा कठिन काम है? भाष्य तो एक ओर रहा तू यथार्थ रूप से वेदव्यास जी के एक सूत्र का भी व्याख्यान करदेगा तो मैं अनेकों धन्यवाद दूँगा।

शङ्कराचार्य-विप्रवर! ब्रह्मज्ञानी आचार्यों के चरण कमलों को मैं सैकड़ों प्रणाम करता हूँ, और उन सबों के चरणों की धूलि अपने शिर पर लेता हूँ, हेब्रह्मन्! यदि आप बूझना चाहेंगे तो मैं अवश्य ही इस बात को दिखाऊँगा कि-व्याससूत्रों के ऊपर मेरा कैसा अधिकार है।

वेदव्यास-अच्छा कहो तो सही-"तदन्तर प्रतिपत्तौ रंहति-सम्परिष्वक्तः।" इसका क्या तात्पर्य है?

शङ्कराचार्य-(अपने मन में)यह ब्राह्मण कौन है? इसने इतना सूक्ष्म गूढ प्रश्न क्यों किया है? पहिले तो इस सूत्र के पूर्व पक्ष में ही सैंकड़ों युक्तियेंहैं फिर उत्तरके विस्तार का तो कहना ही क्या है? इस की मीमांसा कहीं सहज में थोड़े ही हो सकती है? (स्पष्टरूप से पद्मपाद के प्रति) भाई! यह ब्राह्मण कौन हैं? कुछ समझ में नहीं आता?

पद्मपाद-गुरुदेव! मुझेतो ऐसा अनुमान होता है कि यह कोई योगसिद्धिसम्पन्न तपस्वी,ब्राह्मण का रूप धरकरआये हैं (ब्राह्मण की ओर को देखकर) अनुमान क्या प्रत्यक्षही देखलीजिये महाराज! इनके नेत्रों में अलौकिक तेज दमक रहा है, भस्म से ढकीहुई अग्नि कबतक छुपी रहसकती है,

(क्षणभर के अनन्तर) अनुमान नहीं, गुरुदेव मैं सत्य कहता हूँ यह बूढे ब्राह्मण साधारण पुरुष नहीं किन्तु जगद्गुरु-परमगुरु साक्षात् भगवान् वेदव्यास हैं-

शङ्करः शङ्करः साक्षाद्व्यासो नारायणो हरिः ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किङ्करः किङ्करोम्यहम् ॥

शङ्कराचार्य–(व्यासदेव के चरणों में प्रणाम करके) हे महाभाग ! इस छलनाको छोड़िये, अब मैंने समझा कि आप साक्षात् व्यासदेव हैं अब एकबार प्रत्यक्ष दर्शन देकर इस दीनको कृतार्थ करिये ।

वेदव्यास–(अपने रूपसे प्रत्यक्ष होकर) हे शङ्कर ! तुम इस भूतलपर धन्य हो, मैंने शंभुकी सभामें तुम्हारे भाष्यकी चर्चा सुनीथी, इसी कारण उसके देखनेको यहाँ आया हूँ ।

शङ्कराचार्य--आः ? धन्य है मेरा जीवन, भगवान् ! कहां आपके गम्भीरसूत्र और कहां मेरी अल्पबुद्धि ?

वेदव्यास-(शंकराचार्य जीके हाथ में से भाष्य लेकर क्षणभर देखने के अनन्तर) हाँ ! तुम्हारा यह भाष्य बहुत उत्तम बना है, इतने बडे ग्रन्थ में कहीं भी भ्रम वा प्रमाद नहीं है. हे शङ्कराचार्य ! योग, न्याय, सांख्य, मीमांसा आदि कोई तुम्हारे भाष्यकी समान नहीं है,क्यों न हो,जबकि तुम स्वामी गोविन्दपूज्यपाद के शिष्य साक्षात् शिव हो, भाष्य तो अनेकों ने रचा है, परन्तु तुम्हारे सिवाय मेरे हृदय के भावको देव–असुर–मनुष्य- ऋषि आदि कौन जान सकता है ? तुम्हारे समान अकाट्ययुक्तियें और प्रमाण किसी ने नहीं लिखे, अब तुम एक काम और करो, भूमिपर भेदवादी मूढमति दुष्ट नास्तिकों का पराजय करके अपने मतका प्रचार करो ।

शङ्कराचार्य—महाराज! अब मेरी आयु पूर्ण होचुकी है।

वेदव्यास—सत्य है, किन्तु तुम्हारे बिना वेदान्त के सच्चे तत्त्व को प्रकाशित करनेवाला दूसरा कौन है? पातकियों को सच्चा मार्ग कौन दिखावेगा? यद्यपि देवसभा में तुम केवल सोलह वर्ष का ही नियम करके मृत्युलोक में आये थे, जोकि आज पूरे होजायँगे, तौभी अभी तुमको बहुत कुछ कार्य करना शेष है, इतने समय में अवतार को समाप्त न करो, अब दैवबल से आठ वर्ष और मेरी योगशक्ति से आठ वर्ष इस प्रकार सोलह वर्षकी आयु तुम्हारी बढ़ाता हूँ, इतने में सब भेदवादियों को जीत पृथ्वी का दिग्विजय करके ब्रह्माद्वैत मतका प्रचार करो अब मैं जाता हूँ।

शंकराचार्य और शिष्यों का व्यासजी के चरणों में प्रणाम करना और व्यासजी का अन्तर्धान होना

शङ्कराचार्य—भक्तशिष्यो! चलो सब देशों में भ्रमण करें, संन्यासी को एक स्थान पर अधिक नहीं रहना चाहिये।

सब शिष्य—जो आज्ञा गुरुदेव की।

(ऐसा कहकर सब जाते हैं)

चतुर्थ दृश्य।

प्रयागराज—त्रिवेणी का तट।

(जलताहुआ अग्निकुण्ड चारों ओर शिष्यों का खिन्नचित्त होकरखडे होना)

भट्टपाद—प्रियशिष्यो! आज मेरे जीवन की अन्तिम लीला है, यह अन्त समय है, सब मिलकर एक स्वरसे अमृतमय हरिगुणों को गाओ, आज मैं संसार की कलकल से छूटकर शान्तिमय भगवान् के नित्यपद में परमसुख पाऊँगा।

शिष्य हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

(फिर एक स्वर से गाना)

रटहु मन! निशिवासर हरिनाम ॥ टेक ॥
साँचे मीत भक्तप्रेमी हरि, झूँठे सब धन धाम ।
ब्रह्मा आदि देव ऋषि जिनकूं, पूजत पद अभिराम ॥
तात मात दारा सुत बान्धव, नहिं आवत कोई काम ॥
एक नाम हरिको दुख टारत, सुमिरहु आठों याम ॥

(नारायण नारायण कहते हुए श्रीशंकराचार्यजी का प्रवेश)

शंकराचार्य—(अपने मन में) आहा ! यह कैसा अद्भुत दृश्य है ! आज नगर भर में इनके तुषाग्नि में प्राण त्यागने का कोलाहल मचा है ? ऐसे प्रसन्न मुख होकर जलती हुई चिता में बैठना, धन्य धीरज ! धन्य तेज !

भट्टपाद—(शंकराचार्य को देखकर) भगवन् ! मैं आज अन्तसमय श्रीचरणों का दर्शन पाकर कृतार्थ होगया । (जलती हुई चिता में से उठकर प्रणाम करने के अनन्तर) देव ! आपने मेरे जीवन की समाप्ति में दर्शन दिया ?

शङ्कराचार्य—प्रिय भट्टपाद ! तुम यह क्या कहरहे हो ? कहाँ जाओगे ? क्या अपने स्वरूप को भूलगये हो ?, मैं तो यहाँ तुमको अपना रचाहुआ वेदान्तभाष्य दिखाने को आया था, मैंने लोकों के मुखसे यह सङ्कटमय समाचार सुनाथा, परन्तु अब प्रत्यक्षही देखरहा हूँ, इस समय इस इच्छा को छोड़ो ।

भट्टपाद—(वेदान्तभाष्यको देखकर) भगवन् ! मेरी इच्छा थी कि श्रीमान् के भाष्यपर वार्त्तिक बनाऊँ परन्तु भाग्यवश भयानक कालचक्र ने मेरे उस मनोरथ को पूरा नहीं होने दिया, परन्तु अन्तसमय में स्वामी जी के चरणों का दर्शन होगया, इस पातकी के लिये यही बड़े गौरव की बात है ।

शंकराचार्य—प्रियवर ! मैं अनुरोध करता हूँ कि इस समय ऐसा साहस न करो !

भट्टपाद—प्रभो ! मेरी इस धृष्टता को क्षमा करिये और मेरे पहिले वृत्तान्त को सुनिये - आप आज भी जिन बौद्धों को चारों ओर देखरहे हैं, कुछ दिन पहिले यह चौगुने थे, इनके घोर उत्पात से वैदिक धर्म दबता चला जाता था, वेद वेदान्त आदि का कुछ आदर नहीं रहा था, चारों ओर नास्तिकता छागई थी, अपने धर्म की ऐसी दशा देख कर मेरे चित्त को बड़ा कष्ट हुआ, तब मैंने राजा सुधन्वा की सहायता ली और बौद्धमतका खण्डन करने की अटल प्रतिज्ञा की, इस कारण कोई और उपाय न होने से उनके दूषित ग्रन्थ पढ़ने पड़े, हाय ! अभ्यास के गुण अवगुणों को कौन मेट सकता है ? प्राणापणसे बौद्धग्रन्थों का अभ्यास करते २ चित्त पर उनके ही सिद्धान्तों का अङ्कुर जमने लगा, अन्तमें उसका ऐसा विपरीत फल हुआ कि—एक दिन मैं वेदमें दोषदृष्टि करने लगा, परन्तु किसी पूर्व जन्म के पुण्यवश क्षण भर में ही चित्त को बड़ी ग्लानि हुई, अपने को धिक्कार देने लगा, उस समय मेरे नेत्रों में जल भर आया, यह देख और मेरे अभिप्राय को समझ कर बौद्धलोग क्रोध में भर कर मेरे विनाश का उद्योग करनेलगे, अन्त में उन्होंने निश्चय करके मुझे एकबड़े ऊँचे स्थानपरसे नीचेको ढकेल दिया, गिरते समय मैंने कातर भावसे कहा कि—"यदि वेद सत्य होंगे तो मेरा मरण कभी नहीं होगा" इस वेदों के सत्य होने में सन्देह भरे वाक्य को कहने से तथा जिन बौद्धों से पढा उन्हीं से शत्रुता करने के कारण गुरुद्रोही होने से मैं जैमिनि मुनिके मतानुसार आज हर्ष के साथ अग्निमें भस्म होकर विधर्मशिक्षा और अपने धर्म में सन्देह होनेका प्रायश्चित्त करता हूँ, हे भगवन् ! मैं जानता हूँ आप साक्षात् शिवावतार हैं, इसकारण इस समय आपका दर्शन होने से मैं कृतार्थ होगया, अब मुझको प्राण त्यागने का कुछ कष्ट नहीं है।

शङ्कराचार्य-स्वामिकार्तिकेय! क्या तुम अपने स्वरूप को भूलगये? भूतलपर तुह्मारा अवतार बौद्ध मत को निर्मूल करने के लिये हुआथा, फिर तुह्मारे कार्य में दोष कैसे लग सकता है? अब मैं तुम को प्राणदान देताहूँ,मेरे भाग्य पर शा-न्तिक बनाओ।

भट्टपाद-भगवन्! आप का कहना ठीक है, आप क्या नहीं करसकते हैं? मुझे जीवन देना आप के लिये कौन बात है! आप चाहें तो जगत् का संहार करके फिर सृष्टि रचसक-ते हैं, परन्तु तोभी मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं होनी चाहिये, अत-एव चरण छूता हूँ, इस समय मुझ को केवल ब्रह्माद्वैतभाव का दान दीजिये जिस से संसारसागर में परित्राण पाऊँ, और एक निवेदन यह है कि एक मण्डनमिश्र नामक कर्मका-ण्डी माहिष्मती नगरी में रहते हैं, यदि आप उस को जीत लें-गेतो नगर भर जीत लियासा होजायगा, उसकी समान कर्म-काण्डी भारतवर्ष भर में और कोई नहीं मिलेगा वह गृहस्थ धर्म को चलाने और निवृत्तिमार्ग को हटानेवाला है, यदि अ-द्वैत मत का प्रचार करना हो तो पहिले उस का पराजय क-रिये, मुझे निश्चय है कि-धर्मजगत् में आप का आसन सब से ऊँचा होगा, अब मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये आज्ञा मांगता हूँ!

शङ्कराचार्य-सत्यमद्वैतम्! सत्यमद्वैतम्!! सत्यमद्वैतम्!!!

सबशिष्य--सत्यमद्वैतम्! सत्यमद्वैतम्!! सत्यमद्वैतम्!!!

शङ्कराचार्य-आहा! धन्य है भट्टपाद के धैर्य और तेज को, हे भट्टपाद! तुह्मारी कीर्ति जगत् में चिरकाल रहेगी (लो मैं भी अब मण्डनमिश्र के समीप चलता हूँ)

सब शिष्य-हे महाराज! हम सब आपके दर्शन से नि-

प्पाप होगये, इस कारण अपने को धन्य मानते हैं।

शङ्कराचार्य-तुम्हारी सम्मति हो, अब मैं जाता हूँ।

(एक ओर को शङ्कराचार्य और दूसरी ओर को सबकाजाना)

——c——

पञ्चम दृश्य.

माहिष्मती नगरी का मार्ग।

(शिष्यों सहित शङ्कराचार्यजी का आना)

शङ्कराचार्य-शिष्यगण! चलते चलते बहुत समय होगया, अब कुछ देर इस सामने के शिवालय में आराम करके चलेंगे, और सुनाथा कि-इस मंदिर के समीप जो ग्राम दीखरहा है यहाँ के शैव भेदवादी हैं, किसी प्रकार उनसे भी बातचीत होकर उनका भ्रम दूर होजाना चाहिये (सामनें को देखकर) यह मन्दिर में बहुत से शिवभक्त पूजन के भरे और खाली पात्र लियेहुए आ जा रहे हैं (क्षणभर विचारकर) आः आज शिवत्रयोदशी है, हमभी चलकर भगवान् भूतपात के दर्शनकरें

(श्रीशङ्कराचार्यजी का मन्दिर में जाकर शिष्यों के साथ महादेवजी की स्तुति करना और पूजकों का शङ्कराचार्यजी की दिव्यमूर्त्ति के दर्शन से चौंचक होकर एक ओर को सङ्कुचित होकर खड़ेहोना)

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं, गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं, महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि॥१॥
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं, विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवन्हित्रिनेत्रं, सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्॥२॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं, गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम्।
भवं भास्करं भस्मना भूषिताङ्गं, भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्॥३
शिवाकान्तशम्भोशशाङ्कार्धमौले, महेशानशूलिन्जटाजूटधारिन्
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप, प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप॥४॥

परात्परानमेकं जगद्बीजमाद्यं, निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं,तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्५
न भूमिर्नचापो न वन्हिर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
नग्रीष्मोनशीतंनदेशोन वेशो,नयस्यास्तिमूर्तिस्त्रिमूर्तितमीडे६॥
अजंशाश्वतं कारणंकारणानां, शिवंकेवलंभासकं भासकानाम्।
तुरीयंतमःपारमाद्यन्तहीनं, प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥ ७ ॥
नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते, नमस्तेनमस्ते चिदानन्दमूर्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य, नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ८
प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ, महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र ।
शिवाकान्तशान्तस्मरारेपुरारे,त्वदन्योवरेण्यो न मान्यो न गण्यः

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे ।
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् ॥
काशीपते करुणाया जगदेतदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥ १० ॥
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे-
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिङ्गात्मके हर चराचर-विश्वरूपिन् ॥ ११ ॥

स्तुति करने के अनन्तर शङ्कराचार्यजी का ध्यान मग्न होकर बैठना और शिवोपासकोंका परस्पर बातचीत करना ॥

१ शिवोपासक–भाई ! तुमने सुनाहोगा, कोई शङ्कराचार्य नामक संन्यासी सर्वत्र दिग्वजय करतेहुए अद्वैतमत का प्रचार कररहे हैं, मुझेतो अनुमान होता है, यह वही हैं, अनेकों पंडित शास्त्रार्थ में हार मानकर इनके शिष्य होगये हैं, न जाने हमारी क्या दशा होगी ।

दूसरा–हाँ ! भाई कहते तो ठीकहो,यह वही हैं, इनके सामने

जीभ हिलाना भी ठीक नहीं है, यहाँ तो हाँ हाँ हूँ हूँ सेही काम चलेगा।

तीसरा-चाहे जो कुछ कहो, परन्तु हैं यह बड़े विद्वान्! लोग जो इनको शिवावतार कहते हैं सो ठीक ही है।

प्रथम-हाँ भाई! अवतारी नहीं होते तो इतनीसी अवस्था में, ऐसी विद्वत्ता, प्रसिद्धि और सबजगह विजय कैसे पाते?

इतनेही में ध्यानमग्न शंकराचार्य जी के सन्मुख दिव्य मूर्ति भगवान् शिव का प्रकट होना॥

शिव-सत्यमद्वैतम्! सत्यमद्वैतम्!! सत्यमद्वैतम्!!!

इतना कहकर फिर अन्तर्धान होना और सब भेदवादी शैवों का शंकराचार्यजी की शरण आना॥

सब शिवोपासक-(शङ्कराचार्यजी के चरणों में गिरकर) महाराज! हम आपकी शरण हैं, सत्य उपदेश देकर हमारा उद्धार करिये हम घोर नारकी हैं इस कारणही अबतक अज्ञान रूप अन्धकार से दृष्टिहीन होरहे थे, अब आपके उपदेश के अनुसार अद्वैत ब्रह्मका विचार करेंगे, भगवन्! कृपा करके ज्ञानोपदेश देकर हमारा उद्धार करिये।

शङ्कराचार्य-मैं तुम से बड़ा प्रसन्न हूँ, अब तुमको अति-कठिन आत्मतत्त्व सुनाता हूँ, सावधानी से ध्यान देकर सुनो-यह जो तुम अपने सामने विशाल अनन्त संसार को देखरहे हो, यह एक महान् चैतन्य है और ओत प्रोतभाव से सर्वत्र व्यापरहा है, जिसके कारण सकल ब्रह्माण्ड की शृंखला बँधीहुई है, यह पूर्ण परात्पर परब्रह्म चैतन्य ही अनादि कारण है, जिसकी इच्छा से संसार की सृष्टि-स्थिति और प्रलय होती है, वेदान्त के मतमें एक वह निर्गुण-ज्योतिः स्वरूप-सत्य-सार-आनन्दस्वरूप-परमपुरुष ही सब कुछ हैं,

उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इस नाशवान् जगत् में ब्रह्मही सत्य नित्य और सार है. चारों ओर और जो कुछ दीखरहा है सब भ्रम है। तुम, मैं, घर, द्वार, पशु, पक्षी, वन, लता आदि भुवन में जो कुछ चराचर हैं सबही मोह-भ्रम की छाया हैं। यही श्रुतिमें कहा है-

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥

ऐसा ही उपनिषदादि वेदान्त का मत है। इसपर भी जो हम को-तुम, मैं, घरद्वार आदि का भेदभाव प्रतीत होता है, इसका कारण अध्यास है, अर्थात्-जो, जो वस्तु नहीं है, उसको वह वस्तु समझना, संक्षेप से भावार्थ यह है कि-मनुष्य बड़ा अल्पबुद्धि है, सदा प्रवृत्ति के अधीन हुआ मायाचक्र में घूमता रहता है.इसकारण ही पूर्ण ज्ञानमय परमात्माको नहीं जानसकता है,सहज में ही मोह आकर इसके हृदय के ऊपर अधिकार जमालेताहै और भीतर के विवेक को नष्ट भ्रष्ट कर डालता है, तब सब अपने वास्तविक स्वरूपको भूलजाते हैं, अन्धपरम्परा पर विश्वास करके जीव अज्ञानका भंडार बन जाता है, तब जो देह गेहादि मिथ्या हैं उनको ही, सदा रहने वाला समझने लगता है, जैसे कमलवायु का रोगी सकल विश्वको पीला ही देखता है, अथवा जैसे कोई अंधेरे में भ्रम से रस्सी को सर्प समझने लगता है, तैसे ही यह जीव भ्रम-भरे नेत्रों से केवल मिथ्या जगत् की ओर को ही देखता है, परन्तु जब इस के हृदय के ज्ञाननेत्र खुलते हैं, तब भ्रम-रूपी अंधेरा दूर होताहै, और अनन्त जगन्मय एक पूर्ण ज्ञानमय चैतन्य ही दीखने लगता है, वह चैतन्य मनुष्य मात्र में एकसमान है, सब चैतन्यवानों में पूर्णब्रह्म समभाव से पुराहुआ है, अब विचारकर देखो -ब्रह्म और मैं दोनों

में अभेद है,यह विचार बडा गहन है,इसका विचार बडे ध्यान के साथ होसकता है, मनुष्य जब इस गंभीर तत्त्वज्ञान को पाजाता है उसीदिन जन्म सफल होजाता है, केवल मुख से ही 'अहं ब्रह्म' कहने से काम नहीं चलसक्ता है,किन्तु मन से सोहंभाव का वर्ताव करके दिखाना चाहिये, जबही मन में ब्रह्मतेज का प्रकाश होगा, उसीदिन जीव मुक्त होजायगा।

शिवोपासक-गुरुदेव ! क्या जीवात्मा और परमात्मा एक ही चैतन्य हैं ? हम तो समझते थे कि--भिन्न २ हैं।

शंकराचार्य--यह बडा भ्रमभरा हुआ और युक्तिहीन नैयायिकों का मत है। मन में विचारो कि--सर्वत्र शून्य ही शून्य है, उसमें से तुम्हारे शिरपर जो शून्य है (हाथ की मुट्ठी बाँधकर) मेरी मुठी में का यह शून्य क्या उस से भिन्न है ? इसी प्रकार वास्तव में जीवात्मा और परमात्मा भिन्न २ नहीं हैं, मनुष्य को भ्रमवश भेद प्रतीत होता है और जब ज्ञान का प्रकाश होने से वह भ्रम दूर होजाता है तब कुछ भेदाभेद प्रतीत नहीं होता है, सर्वत्र-अद्वैत,पूर्ण,ज्योतिः स्वरूप, चैतन्य, अनन्तव्याप्त, अनन्त संसार में आदि अन्त हीन, सर्वमूलाधार, सत्य, नित्य, चिदानन्दमय, परात्पर, ब्रह्म ही दीखने लगता है, अब तुम जीव का कर्त्तव्य सुनो-'मैं कौन हूँ, संसार में क्यों आया हूं और मुझको क्या करना चाहिये' मनुष्यमात्र को यह विचार करना चाहिये, जब मन तत्त्वज्ञान की खोजका अभिलाषी हो तब श्रेष्ठ गुरुकी शरण लेकर अमृतसमान उपदेशों को ग्रहण करे, तिनुके की समान हलका और वृक्षकी समान सहनशील बनजाय,सदा धर्मकी रक्षा करै,हृदय में तिलभरभी तमोभाव न रक्खे,सरल

विश्वासी बना रहे, कभी मन में कपटभाव न रक्खे, समय को सज्जनों के संग में बितावे, जीवन के प्यारे साथी क्षमा-दया-सरलता-शमन-दमन आदि का सेवन करे, यदि मन मोक्ष का अभिलाषी होयतो वैराग्य और विवेक इन दो परम मित्रों की शरण लेय, तथा आत्मतत्त्व का विचार करे तब पूर्णज्ञानमय अनन्त ईश्वर की प्राप्ति सहज में ही होजायगी, विषकी समान जान विषयवासनाओं से बचारहे, जगत् भरको अपनी समान देखे, मनोमन्दिर में सदा सर्वसार नित्य पूर्णज्ञान का प्रकाश करे, जिनकी आज्ञासे इस संसार में आये हैं, जिनकी कृपा से सर्वोत्तम ज्ञानरूपी रत्न पाया है, सदा मनसा वाचा कर्मणा उनही की सेवा करना मनुष्य शरीरधारी जीव का परमकर्त्तव्य है। इसको छोड़कर दूसरा कोई मुक्ति का उत्तम उपाय नहीं है।

शिवोपासक-गुरुदेव! आपने हमारा उद्धार कर दिया, अब हमभी संन्यास आश्रम की दीक्षा लेकर सदा आपकी सेवा में ही अपने जीवनको सफल करना चाहते हैं।

शङ्कराचार्य-भाई! इस आश्रम का निर्वाह होना सहज नहीं है,जब आत्मतत्त्व को समझनेलगे,आध्यामिक बल से बलवान्, होजाय, मायामोह जड़भाव दूरहोजाय, तब पुरुष अद्वैतमतका अधिकारी होसकता है, परन्तु जबतक जीव इस गम्भीरज्ञान को न पासके तबतक, शिव-दुर्गा-विष्णु गणेशादि देवताओं का सदा सरल हृदय से भजन और पूजन करता रहै। इसीकेद्वारा धीरेधीरे ज्ञानका प्रकाश होकर पुरुष परमात्माके समीप होजायगा, इसीकारण परम प्रवीण महाज्ञानी शास्त्रकारों ने ईश्वरस्वरूप की भिन्न १ रीति से व्याख्या करी है। विश्वास के साथ ईश्वर की भक्ति करने

वाले के सकल मनोरथ सफल होते हैं। परन्तु सूक्ष्मभाव से विचार करने पर ब्राह्माण्डभर में एक के सिवाय दूसरी वस्तुही नहीं है,जीव के मायाको त्यागनेपर ब्रह्ममें कुछभेद नहीं रहता है, औरभी धीरभावसे देखने पर प्रतीत होगा कि सकल वैदिक सम्प्रदाओं का परिणाम में एकही फल निकलता है, परन्तु हाय! अज्ञानके कारण सब लोग इसको नहीं समझसकते हैं, इसकारण वृथा गोलयोग करके आपस में वैरभाव रखते हैं, परन्तु यह अद्वैतवाद ही ज्ञानियों का मानाहुआ मुक्ति का एकमात्र उपाय है।

शिवोपासक-भगवन्! यह तत्त्वोपदेश तो हमारी समझ में आया परन्तु अबहम यहजानना चाहते हैं कि-मोक्षमार्ग का आश्रय लेनेके लिये कौन २ उपाय श्रेष्ठ और सुलभ हैं?

शङ्कराचार्य-मुक्ति का उपाय तो विवेक और वैराग्यही हैं, परन्तु संसारमें रहकर सबसे विवेक और वैराग्य की साधना नहीं होसकती है संसारकी घोर कुटिलता ममता-मोह आदि बड़ी बड़ी बाधाएं देते हैं इसकारण भक्ति सहित संन्यासही मोक्षमार्ग का दिखलाने वाला है।

शिवोपासक-तबतो हे देव! अपनी चरणसेवा के लिये आज्ञा दीजिये।

शंकराचार्य-परमकरुणामय मङ्गलमूर्त्ति भगवानही तुम्हारा मंगल करेंगे।

शिवोपासक- जय हो गुरुदेव की, जयहो धर्मकी, जयहो सत्यकी।

शंकराचार्य-देखो श्रेष्ठशिष्यों! अब विलम्ब करना उचित नहीं है, शीघ्रही यात्रा करके आजही मण्डनमिश्र से मिलना है।

सत्र--भगवन् ! जो आज्ञाहो, हम सेवक उसका पालन करने को उद्यत हैं ।

[सबजाते हैं]

षष्ठ दृश्य ।

(माहिष्मती नगरी और रेवाका किनारा)

[तदन्तर लवंगिका और बकुलिका नामवाली मंडनमिश्रकी दोदासी प्रवेशकरती हैं]

लवंगिका--सखि ! आज तुम्हारी पण्डिताइन बड़ी चिल्ला रहीं थीं, तूने ऐसा कौन अपराध किया था ?

बकुलिका-अरी बहिन ! मुझसे बड़ी भूल होगई थी, मैं आँगनमें खड़ी थी और मेरा ध्यान दूसरी ओर था, इतने ही में पण्डिताइनजी तुलसी का पूजन करने को आई उसी समय में पीछे को हटी सो मेरे लहँगेकी लामन उनके लगगई इसकारण मुझे डपटरहीं थीं और कोई बात नहीं थी ।

लवंगिका-हाँ हाँ मैं समझगई ! तेरा ध्यान जहाँ था वह मैं जानतीहूँ,वह मेरा रामाउधर आयाहोगा और कौनबात है

बकुलिका-(कुछ सकुचाकर)सखि लवंग! तू बूढ़ी होनेको आगई, परन्तु अभीतक तेरा चौल करने का स्वभाव नहीं गया ? देख तो तू खुल्लमखुल्ला ऐसी बातें कररही है, यदि यहबात पण्डिताइन सुनलें तो मेरी कौन दशा करें ?

लवंगिका-ओहो ! तुझेही तरुणाई चढ़ी है और जगत् भर की सब बूढ़ी हैं । क्या हमकभी तरुणी नहीं थीं ? और हमने तो ऐसी बातें करी ही नहीं ? परन्तु आजतक किसीने जानभी पाया ? और तेरा सारे मोहल्लेभरमें डंका बजरहा है,परसों पण्डिताइन भी कहरही थीं कि रामा और बकुली में रात दिन रहता है ।

वकुलिका--(घबड़ाकर) अरी बहिन! सत्य कहरही है क्या? पण्डिताइन से किसने कहदिया है।

लवंगिका--किसनेकहादिया?कहकौनदेता?तेरेगुणोंनेकहादिया उसदिन पण्डिताइन न्हाकर चुकीथीं तो तू केश पूछरही थी और मैं पहरनेकी साड़ी देरहीथी,तब मरे ने तेरे पीछे आकर क्या किया था,वह मैंने भी देखाथा, परन्तु उन्होंने देखकर भी अनदेखासा करदिया,तुम दोनोंने यही समझा कि किसीने देखा ही नहीं है, जब बिल्ली आँखें मूँदकर दूधपीती है तो वह यही समझती है कि–मेरी समान किसीको दीखताही नहीं।

वकुलिका–अबतो मेरा सबही भेद खुलगया तो अब चुरा कर ही क्या करूं? सखि! तू मेरी माकी बराबर है, तूही कोई उपाय बता, मैं कैसी करूं? उसको देखते ही सब सुध-बुध भूलजाती हूँ और उसकी भी ऐसी ही दशा होजाती है, इसी कारण ऐसी मूर्खता होजाय है।

लवंगिका–अरी! सोई तो मैंने कहा था कि–तरुणाई में सभी स्त्रियों की ऐसीदशा होजाय है परन्तु ऐसी निर्लज्जता कोई नहीं करै हैं, अरी! तुमतो दोनो यहाँ ही रहो हो, काम धाम से निबटकर रात को चाहेसो करो कोई रोकनेवाला है? परन्तु हरसमय चाहे जो कुछ करना तो मनुष्यों को शोभा नहीं देता है।

वकुलिका–अरी! तू कहै है सोतो सबठीक है परन्तु उन की मेरी चार आँखें हुई कि–मुझसे फिर रहा ही नहीं जाता, आज भी मरी वही तो बात होगई।

लवंगिका–आज क्या हुआ, बतातो?

वकुलिका–कल वसन्तपंचमी थी ना! सो रात में हम दोनो ने यथेच्छ क्रीडा करी, वही बातें सवेरे भी मेरे मन में

घूमने लगीं सो मैं आँगन में खड़ीहुई न जाने क्या काम कर रही थी परन्तु ध्यान मेरा रात की बातों में ही था, इतने ही में मेरा ऐसा ख्याल बँधा कि—वह आकर मेरे ऊपर रंग डालते हैं इसकारण मैं पीछे को हटी, तभी तो पण्डिताइन जी के मेरे लहँगे की लामन लगगई।

लवंगिका—देख सखि! ऐसी ही पागल बनी रहेगी तो शिर पकड़ कर रोवेगी, खूब सावधानी से काम लेना अच्छा है नहीं तो पण्डितजी को खबर होने पर दोनों कान पकड़-कर निकाल दिये जाओगे। वैसे स्त्री पुरुषों में ऐसी बातें होने को कौन नहीं जानता है? परन्तु समय समय पर ही सब बात सजे है, तू और तेरा पति ही तो संसार से निराले नहीं हो आगे बहिन तू जान।

वकुलिका—अच्छा तो अब शीघ्र चलो, बातों में बड़ी देरहोगई, इसमें भी पण्डिताइन जाने क्या समझनेलगें? शीघ्र कलश भरकर चलना चाहिये (ऐसा कहकर नदी में से कलश भरती हैं)।

(इतने ही में परदे में नारायण शब्द की ध्वनि होती है)

वकुलिका—(उदककर) यह काहेका दुंद है! (परदे-की ओर को देखकर) यह मरे कहाँ से आये? सखि लवंग! तूने यह भी देखा? देखतो मरे कितने संन्यासी आरहे हैं।

लवंगिका—(देखकर) ओः हो! अरी! यह ततइयों का छत्ता कहां से निकलपड़ा, मुझे मालूम होता है, अब इनकी आयुपूरी होचुकी, जो इधर को आरहे हैं।

वकुलिका—हमारे पण्डितजी को कहीं खबर होगई तो इन मरोंके शिरही उडवादेंगे, मरे बावलोंने ढोंग कैसा बनायाहै?

(तदनन्तर नारायण शब्द का उच्चारण करते हुए सब शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्य जी आतेहैं)

शङ्कराचार्य—शिष्यों! देखो इस माहिष्मती नगरी में कैसी

शोभा है, यह रेवा नदी भी क्याही सुंदर लगती है, जिसका जल अमृतको भी लज्जित कररहा है, यह देखो दोनो पार बडे २ पक्के घाट बनेहुए हैं जिनपर सुंदर मण्डपों कीभी कमी नहींहै, जिनमें बैठेहुए यह सहस्रों ब्राह्मण मध्यान्हसन्ध्या कररहे हैं, मानों यहाँ कर्मकाण्ड की मूर्त्ति विराजमान है धन्य ! मण्डनमिश्र धन्य !!

पद्मपाद-महाराज ! इस नदीपर जहाँ तहाँकी भूमि स्वेत क्यों होरही है ?

शंकराचार्य-ठीक प्रश्न किया, अरे ! इसग्राममें असंख्यों अग्निहोत्री हैं, उनकी भस्म से जगह २ यह दशा होरही है, देखोना ! जिधर तिधरसे होमके धुएँकी सुंदर सुगंध आरही है।

त्रोटक-तबतो गुरुजी ! ऐसा कहना चाहिये कि-इस नगरी में मीमांसा के पूर्वकाण्ड (कर्मकाण्ड) की वर्षाही होती है

शङ्कराचार्य-इसमें क्या सन्देह है, अच्छा अब हमको मण्डनमिश्र का घर ढूंढना चाहिये (सामने को देखकर)यह कोई स्त्रियें जल भररही हैं इनही से बूझना चाहिये (आगे को बढकर) हे स्त्रियों ! हम बटोही हैं,हमको कुछ बूझना है तुम बतादोगी क्या ?

वकुलिका-शिव शिव,हेमहापातकी ! तू हमको मुख भी न दिखा, तुझे इस परमसुन्दरतरुणाई को व्यर्थ करनेका उपदेश जिस चाण्डाल ने दिया है, उसको सत्यानाश हो (ऐसा कहकर अँगूठा दिखाती है)

शंकराचार्य-(हँसकर)अरी स्त्रियों ! हमारे प्रारब्ध में ही ऐसा था,उसमें कोई क्या करसकता है ? जो बात बीतगई उस की चर्चा करनेसे कौन लाभ है ? सो अधिक बातें न बनाकर जो हम बूझें सो मालूम होतो उसका उत्तर देदो।

लवंगिका-(आगे बढ़कर) अरे बाबा ! तू क्या कहता है क्या तुझे आज की पूरियों की ठीकठाक करनी है ? तुम इन भिखारियोंके गेरुआ कपड़ोंको उतारडालोगे तो केवल पूरियें ही क्या जो कुछ चाहोगे सोही इस नगरीमें मिलेगा।

शंकराचार्य-माताओं ! हमें और कुछ नहीं चाहिये, इस नगरी में एक मण्डनमिश्र नामक पंडित है, उन के घर जाना चाहते हैं यदि तुम जानती होओ तो बतादो।

बकुलिका-वाह रे पागलों ! सूर्य को देखने के लिये क्या मशाल की आवश्यकता होती है ? बताती हूँ और जिससेमें महाराज मंडनमिश्र जी के घर की दासीहोने के योग्य हूँयह तुम को ज्ञात होजायगा, सुनो

जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्कीराङ्गना यत्र गिरा गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥

अरे भिक्षुकों !जिनके द्वारपार दो पींजरे लटकरहे हैं,उन मे एक २ तूतीहै,तिन दोनों में से एक कहती है कि-यह जगत् सत्य है तो दूसरी कहतीहै कि-असत्य है, इसप्रकार जिनके द्वारपर टँगेहुए पक्षी संस्कृत में वाद करते हैं,उस स्थानको ही मण्डन महाराज का समझना।

लवंगिका-(आगे बढ़कर) अरे ! सुखका स्वाद न जानने वाले ! सुन-

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीराङ्गना यत्र गिरा गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥

अरे ! उन में से एक तूती कहती है कि-यह जगत् स्वतः सिद्ध है, तो दूसरी कहतीहै कि-जगत् दूसरे की सत्ता से भासरहाहै, ऐसी स्पष्ट संस्कृतभाषा में जिनके द्वारपर के पक्षी बोलें हैं। उसी स्थान को मण्डन महाराज का समझ लेना।

शङ्कराचार्य–क्यों शिष्यों! सुनी ना इन दासियोंकी बातें? इस से अनुमान करलो, उस ब्राह्मण की कैसी पण्डिताई होगी?

बकुलिका–सखि लवंग! अबतो जल के कलश लेकर चलो बहुत देरी होगई, पण्डितानी क्या कहेंगी?

[ऐसा कहकर सब जाते हैं]

पद्मपाद् मालूम होता है यह शास्त्रार्थ बड़ा अद्भुत होगा, क्योंकि–बराबरका जोड़ होने पर ही युद्ध और शास्त्रार्थ का चमत्कार देखने योग्य होता है।

शङ्कराचार्य अस्तु, अब हम ऐसे जायँगे तब तो काम नहीं चलेगा, क्योंकि–उनके द्वारपर पहरा रहता है, जिस परभी अनेकों पण्डित हैं, उन को जीतने पर कहीं मण्डन मिश्र से सम्भाषण होगा! ऐसा करने से तो बीस वर्षमें भी काम सिद्ध नहीं होगा, इसकारण तुम सब इस रेवा नदीके किनारे पर के शिवालय में विश्राम करो, मैं योगमार्ग से झरोखे में को जाकर उसके घरके भीतर उतरता हूँ और एक साथ उससे ही मिलता हूँ, निबटकर फिर इसीशिवालयमें आजाऊंगा

सब शिष्य–जोआज्ञा।

ऐसा कहकर नारायण नारायण शब्द करते हुए सब शिवालय में और शंकराचार्य नगरी में जाते हैं)

—o—

सप्तम दृश्य।

(हाथ में पंचपात्र लिये मण्डन मिश्र का आना)

मण्डनमिश्र--(आपही आप) आज श्राद्धका दिन है, इस कारण व्यासजी और जैमिनि ऋषि को निमन्त्रण दिया है, परन्तु मध्यान्ह होने को आगया, वह दोनों ऋषि अभीतक न जाने क्यों नहीं आये!

(इतनेही में घवड़ाए हुए विद्यार्थी का आना)

मण्डनमिश्र–क्योंरे कृष्णमिश्र ! सब सामग्री ठीक होगई !

कृष्णमिश्र–गुरुजी ! पक्वान्न तो सब तयार हैं,ब्राह्मणों की ओर से ही देर है ।

मण्डनमिश्र--और पूजा की सामग्री, तिल पवित्री आदि सब इकट्ठे करके रखदिये हैं । ?

कृष्णमिश्र–हाँ सब ठीक करके रखदिया है, परन्तु यहतो बताइये श्राद्ध के ब्राह्मण कौन हैं ? हमें तो मालूम नहीं है, आप बतावें तो मैं बुलाने को जाऊँ ।

मण्डनमिश्र–ब्राह्मणों के नाम आने से पहिले किसी को भी मालूम नहीं होसकते, श्राद्धका समय होतेही वह अपने आप आजायँगे, तुम और सब सामग्री ठीक रक्खो ।

कृष्णमिश्र–(विचारकर अंगुली चलाकर अरेरे ! पूजा की थाली में तिल रखने तो भूलही गया) ।

मण्डनमिश्र–(हँसकर ; क्यों बेटा ! भूलगया ना !

ऐसा कहकर शिष्य दौड कर भीतर जाता है और फिर घवडायाहुआसा आता है

मण्डनमिश्र–देख और कुछ न रहगया हो !

कृष्णमिश्र–अब कुछ नहीं रहा,परन्तु महाराज ! व्यासदेव और जैमिनि ऋषि आगये ।

मण्डनमिश्र–फिर वह हैं कहाँ ? यहाँ को लिवाता क्यों नहीं लाया ?

कृष्णमिश्र–उनको चरण धोने के लिये जल देकर आपको समाचार देने आया हूँ ।

मण्डनमिश्र–जातो उनको लिवाकर आ, और पूजाकी सामग्री भी लेते आना ।

कृष्णमिश्र—प्रतीत होता है आज श्राद्ध के निमित्त इनको ही निमंत्रण दिया गया है!

मण्डनमिश्र—हाँ हाँ यही बात है, जा शीघ्र जा।

तदनन्तर विद्यार्थी भीतर जाकर पूजाकी सामग्री लिये हुए व्यासदेव—और जैमिनि ऋषि के साथ आता है।

कृष्णमिश्र—महाराज! इधरको आइये, गुरुजी इधर ही हैं।

मण्डनमिश्र—(उठकर नमस्कार करके) आइये महाराज! इस आसन पर वैठिये।

तदनन्तर व्यासजी और जैमिनि ऋषि आसनपर बैठते हैं।

व्यासजी—मण्डन! अब विलम्ब क्या है? श्राद्ध का काम चलता करो।

मण्डनमिश्र—बहुत अच्छा महाराज पैर धोकर आता हूँ (ऐसा कहकर जल का लोटा लिये हुए हाथ पैर धोने को उठकर जाते हैं, इतने ही में नारायण नारायण कहते हुए श्रीशंकराचार्य झरोखे में को उतरते हैं, उनको देखकर दुःखित होते हुए) शिव! शिव!! कौन है रे यह दुष्ट! पुण्य कर्म के समय अपना कालामुह दिखाकर मुझ को दुःखित करता है (फिर क्रोध में भरकर उनसे प्रश्न करते हैं)

॥कुतो मुण्डी॥

अरे यह मुण्डन कराने वाला कहाँ से? आया!

शङ्कराचार्य—('कुतः') इस पद का दूसरा अर्थ लेकर उत्तर देते हैं)

॥ आगलान्मुण्डी ॥

अरे कर्मी! मैंने गलेपर्यन्त मुण्डन कराया है।

मण्डनमिश्र—(अपने प्रश्नका अर्थ दूसरी रीतिसे करा-हुआ देखकर फिर कहते हैं)

॥ पन्थास्ते पृच्छ्यते मया ॥

अरे ! कहाँ से मुँडा है यह नहीं बूझता हूँ, किन्तु तेरे मार्ग को बूझता हूँ।

शङ्कराचार्य–(इसका भी अर्थ बदलकर कहते हैं)

॥ किमाह पन्थाः ।

अरे! मेरे मार्गको बूझता है, फिर उस मार्गने तुझको क्या उत्तर दिया ?

मण्डनमिश्र–(इस प्रश्नका भी वैसे ही दूसरा अर्थ करने पर क्रोधमें भरकर)

॥ त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि ॥

अरे मूर्ख ! मुझे मार्गने यह उत्तर दिया कि–तेरी माता मुंडा है

शङ्कराचार्य–(हँसकर)

॥ पन्थानमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मण्डन ॥

॥ "त्वन्माते" त्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम् ॥

अरे नासमझ ? तुझ जो यह उत्तर मिला कि–" तेरी माता मुंडा है" वह तुझ प्रश्न करने वालेके ऊपरही घटसकता है, मुझ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

मण्डनमिश्र–(अपना कहना अपनेही ऊपर आनेके कारण अतिक्रोध में भरकर)

॥ अहो पीता किम् सुरा ॥

अरे ! ऐसी ऐंडी बेंडी बहकीहुई बातें कहता है, कहीं सुरा (शराब) तो नहीं पीली है ?

शङ्कराचार्य– ("पीता" शब्दका "पीना" अर्थ न लेकर "पीलेवर्णकी" यह अर्थ करके बोलते हैं) ॥

न वै श्वेता यतः स्मर ॥

अरेमूर्ख पशु ! सुरा " पीता " कहिये पीली नहीं होती है

किन्तु "श्वेता" कहिये श्वेतवर्णकी होती है, इसका स्मरण तो कर ॥

मण्डनमिश्र—(ताली बजाकर)

॥ किं त्वं जानासि तद्वर्णम् ॥

अरेनीच ! संन्यासी होकर भी तू सुराके वर्ण (रंग) को जानता है ?

॥ अहं वर्णं भवान् रसम् ॥

हां ! मैं वर्ण को तो जानता ही हूँ, क्योंकि-अकार ककार आदि वर्णों में कहाहुआ जो वेद उसको मैं जानता ही हूँ, परन्तु तू उस सुरा के स्वादको भी जानता है।

मण्डनमिश्र- (बातको बदलकर) अरे निर्लज्ज ! यह तो रहनेदे—

॥ कन्थां वहसि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्वहाम् ॥

॥ शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति ॥

अरेबैल ! सब पशुओंका टाट पलान ढोने को गधा होता है, परन्तु गधेसे भी न उठसके ऐसी गुदड़ी को तो उठाने में तुझे बोझा नहीं लगता है, अरे पातकी ! चोटी और यज्ञोपवीत का क्या तुझको बोझालगता था ?

शङ्कराचार्य—अरे विषयलम्पट ! सुन—

॥ कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्वहाम ॥

॥ शिखा यज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति ॥

अरे ! तेरे बापसे भी न उठसके ऐसी गुदड़ी को मैं शरीरपर ओढ़ताहूँ, और शिखा यज्ञोपवीत मुझे भारी नहीं लगते थे परन्तु हां वह वेदको भार प्रतीत हुए।

मण्डनमिश्र—अरे पुरुषार्थहीन ! सुन—

॥ त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्त्या परिरक्षणे।
॥ शिष्यपुस्तकभारेप्सोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता॥
अरे! स्त्री की रक्षा करनेकी शरीर में शक्ति न होने से गृहस्थ धर्मको त्यागकर, शिष्योंके समूह और पुस्तकोंके भार उठाने वाला जो तू उस तेरी ब्रह्मनिष्ठा जानली।

शंकराचार्य--अरे सुन!
॥गुरुशुश्रूषणालस्यात्समावर्त्य गुरोः कुलात्।
॥ स्त्रिया शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता॥
अरे स्त्रीलम्पट! गुरुसेवा करने की शक्ति न होने से ब्रह्म-चर्य को समाप्त करके स्त्रियोंसे सेवा करानेवाला जो तू तिस तेरी कर्मनिष्ठता देखली।

मण्डनमिश्र--अरे! अधिक बड़बड़ क्यों कररहा है? तू जिसकारण संन्यासी बना है यहभी मुझको मालूम है सुन--
॥ क ज्ञानं क च दुर्मेधाः क संन्यासः क वा कलिः।
॥ स्वाद्वन्नभक्ष्यकामेन वेषोयं योगिनां धृतः॥
अरे कर्मभ्रष्ट! तेरा यह ज्ञान कहाँ? संन्यास कहाँ? और तेरी दुर्बुद्धि कहाँ? तथा यह कलियुग कहाँ? इनमें कहीं किसीका सम्बन्ध बनता है? रोज रोज मिष्टान्न खानेको मिलता है, इसीकारण यह भिखारी का भेष बनारक्खा है, अरे नीच! तूने जो पेटकेलिये कर्म छोड़दिये, अरे! इससे तो तूने अपने पेट में छुरीही भोंकली होती।

शङ्कराचार्य--अरे मूढ़! तू कर्मठ क्यों बना है यह मैं भी जानता हूँ, सुन--
॥ क स्वर्गः क दुराचारः काग्निहोत्रं क वा कलिः।
॥ मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्मिणां धृतः॥
अरे! यह तेरा कर्म कहाँ? और तिससे मिलनेवाला स्वर्ग

कहाँ ? तथा यह अग्निहोत्र कहाँ ? और यह कलियुग कहाँ ? एक का दूसरे से कुछभी मेल नहीं है केवल स्त्रियों से मैथुन मिलता है इसकारणही यह कर्मपिना फैलाया है।

मण्डनमिश्र-अरे ! तू कैसा नीच है ? हरे हरे ! क्या स्त्रियों की निंदा करता है ? सुन-

॥ स्थितोऽसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्द्धितः।
॥ अहो कृतघ्नता मूर्ख कथं ता एव निन्दसि ॥

अरे ! जिन्होंने तुझको जन्म दिया और अनेकों दुःख सहकर बढ़ाया, ऐसी स्त्रियों की जो तू निंदा करताहै इस कारण तू बड़ा कृतघ्नी है, तेरा तो मुखभी नहीं देखना चाहिये।

शङ्कराचार्य-अरे पापोंके पहाड़ ! मैं तो कृतघ्न नहीं हूँ, परन्तु तू जैसा है सो सुन-

॥ यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासां जातोऽसि योनितः ॥
॥ तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम् ॥

अरे ! तूने जिन स्त्रियों का दूध पिया और जिन की योनिमेंसे निकला है, उन ही स्त्रियोंके साथ पशुओंकी समान रमण करता है, तुझे लज्जा नहीं आती ? ऐसा वर्त्ताव तो केवल पशुओं में ही होता है, इस कारण तू मातृगामी है, अरे ! तेरे पातक का तो प्रायश्चित्त भी नहीं है,

मण्डनमिश्र-(यह भी जैसे का तैसा ही उत्तर मिला, इस कारण हाथ उठाकर)

॥ दौवारिकान्-वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः ॥

अरेनीच ! मेरे ड्योढ़ीवान् को धोखा देकर तू चोर की समान कैसे चला आया ? इस कारण तुझको अवश्य ही दण्ड मिलना चाहिये।

शंकराचार्य—अरे ! तू चोर होकर दूसरेको चोर कहने वाले सुन--

॥ भिक्षुभ्योऽन्नमदत्त्वा त्वं भोक्ष्यसे स्तेनवत्कथम् ॥

संन्यासी महात्माओं को अन्न देना पड़ेगा, इस कारण द्वारपर सेवक को बैठाकर भीतरही भीतर मिष्टान्न खाने वाले को शास्त्र चोर कहते हैं, इस कारण चोर मैं नहीं हूं तूही दण्ड पाने के योग्य चोर है ॥

मण्डन मिश्र--अरे दुराचार सुन —

॥ भ्रूणहत्यामवाप्तोऽपि पुत्रानोत्पाद्य धर्मतः ॥

अरे ! चाण्डाल तूने ब्रह्मचर्य को समाप्त करने के अनन्तर गृहस्थ में जाकर पुत्र उत्पन्न नहीं किया, इसकारण तुझको बालहत्या का पाप लगा ।

शंकराचार्य—(हँसकर) अरे ! बालहत्या तो होगी, परन्तु तुझको तो सबसे घोर हत्या लगी है सुन—

॥ आत्महत्यामवाप्तस्त्वं अविदित्वा परं पदम् ॥

अरे ! तुझको आत्महत्या का पाप लगा है, क्योंकि मैं कौन हूँ, आगेको क्या होगा, इसका कुछ विचार न करके आत्माको जीवन मरण के चक्र में डालदिया, इस विषय में शास्त्र कहता है कि—

॥ आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।

स्त्री, पुत्र, धन आदिसे हाथधोने पड़ैतो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु आत्मा की रक्षा करै, इसके विपरीत आत्माका नाश करनेवाला जो तू तिस तुझको बता कौन दण्ड दियाजाय ?

मण्डनमिश्र—(यह बातभी अपनेही ऊपर आई इसकारण दाँतोंसे दाँत पीसकर)

कर्मकाले न सम्भाष्यस्त्वं मूर्खेण साम्प्रतम्।
अरे! इस पुण्य कर्म को करतेहुए मैं तुझसे मूर्ख से बोलना नहीं चाहता ॥

शंकराचार्य-(हँसकर और मण्डनमिश्र के कहने में 'संभाप्यस्त्वहं' यहां छन्द के विराम में यतिविच्छेद हुआ जानकर)

अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभंगो न भाषिणा ॥
वाह! वाह! अरे! यतिभंग करके बोलनेवाले तेरी पण्डिताई के प्रकाश की तो खूब कलई खुली ॥

मण्डनमिश्र-अरे! (इसी बात को साधने के लिये)

॥ यतिभंगे प्रवृत्तस्य यतिभंगो न दोषभाक् ॥
अरे मूर्ख! यति का भंग (पराजय) करने में जो प्रवृत्त हुआहै उसके करने में यदि यतिभंग होजाय तो कुछ दोष नहींहै

शंकराचार्य-("यतिभंगे प्रवृत्त" इस मण्डनमिश्र के कथन पर कोटि कहकर उसकी अंगुलि को उसी की आँखों को ठसीहुई सी करते हैं॥

॥ यतिभङ्गे प्रवृत्तेश्च पञ्चम्यन्तं समस्यताम् ॥
अरे बहुत ठीक कहरहा है, क्योंकि- " यतिभङ्ग " इस पदको पञ्चम्यन्त समास करो तब " यतिसे भङ्ग अर्थात् पराजय " ऐसाठीक २ अर्थ निकल कर, इतने समयतक जो-बात चीत कीहै उसका परिणाम तू अपने आप ही निकाल लेगा

मण्डनमिश्र-(उत्तर न आने से झुँझलाकर)

॥मत्तो जातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषसे ।
अरे! क्या करूँ, यह क्षुद्र मांसभक्षी मत्त होकर इतना बड़बड़ारहा है।

शङ्कराचार्य-("मत्तशब्द का उन्मत्त अर्थ न करके "मुझसे ऐसा अर्थ करते हुए कहतेहैं-)

॥ सत्यं ब्रवीषि पितृवत्त्वत्तो जातः कलञ्जभुक् ॥

अरे! ठीकही है जैसा बीज तैसा अंकुर, तुझसे जो उत्पन्न हुआ वह अपने पिताकी समान क्षुद्र मांसभक्षी और उलटी बातें करने वाला ही है, इसमें आश्चर्य ही क्या?

मण्डनमिश्र– (जब आगे को कुछ उत्तर न बनपड़ा तो हाथमेंका लोटा पटककर चिल्लाने लगे कि–)अरे कौन हैरे,इस चाण्डालको पुण्यकर्ममें कैसे आनेदिया?,यज्ञमण्डप में कुत्ते के घुस आनेसे जैसा दुःख यज्ञकरनेवाले को होता है, तैसाही इस समय इसके यहाँ घुसआने से मुझको होरहा है, (दाँत चबाकर)क्याकरूँ! यदि इस समय मेरे पास तरवार होती तो इसका शिरही काटलेता(जोरसे:चिल्लाकर)कौन है रे! इसदुष्ट को उधर लेजाकर गरदन तो मारदो!

शङ्कराचार्य– (मण्डनमिश्रसे भी अधिक चिल्लाकर और कमंडल तानकर) अरे विषरूपी मदसे अन्ध ब्राह्मणोंमें पशु! बड़ीभारी बमईके महासर्प की समान स्त्री--पुत्र--सुवर्ण आदिरूप बिलमें छुपकर बैठा है, परन्तु (छातीपर हाथरखकर) यह परममंत्रवेत्ता उस बिल (भट्टे) में से तुझको निकालकर, नाक में नाथ डाल, दाँत तोड़ और संन्यासी बनाकर अपने साथ लेजाये बिना नहीं छोड़ेगा, यह निश्चय जान।

(व्यासदेव और जैमिनि मुनि चकित होते हैं]

व्यासदेव--क्यों जैमिनिजी! यह कौन हैं. पहिचाना क्या?

जैमिनि–गुरुदेव! आपने जानलिया होगा, मेरी ऐसी योग्यता कहाँ है?

व्यासदेव–अरे! भविष्योत्तर पुराण में जो शंकरावतार लिखा है, वह यही तो है।

जैमिनि–क्या यह कैलाशनाथ हैं? फिर इनके विषय में

कहना ही क्या? परन्तु गुरुजी! आपको इनके वादसे बचा रहना चाहिये और किसीप्रकार विवादभी रुकवाना चाहिये

व्यासदेव--चुप रहो, वही युक्ति करता हूँ, अब यह मण्डनमिश्र को छकाभी बहुत चुके (मण्डनमिश्र से) अरे! मण्डन यह क्या गड़बड़ी कररक्खी है, अपने धर्म की ओरही ध्यान देकर देख, मध्यान्हकाल में जोअतिथि आवे वह विष्णु की समान पूजनीय है, इसकारण यह कैसाही हो, इस को दुर्वचन न कहकर सत्कारपूर्वक अन्न दे, फिर चाहैं जो कुछ बातचीत करना।

मण्डनमिश्र--(सावधान होकर) आहा हा! ठीक है, महाराज! आपने बहुत अच्छा उपदेश दिया, पहिले मुझ को क्रोध आगया था, इसलिये मैं क्षमा चाहता हूँ (ऐसा कहकर जल से नेत्रों को धोने के अनन्तर शङ्कराचार्यजी की ओर को मुख करके) आप मुझ से बड़े हैं इसकारण मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मध्यान्हकाल में जो मेरे द्वारपर आवेगा वह चाण्डाल होने पर भी मेरा पूज्य है, इसकारण मैं आपको नमस्कार करता हूँ (ऐसा कहकर नमस्कार करके) महाराज! भिक्षा करने को चलिये।

शङ्कराचार्य--भाड़ में जाय तेरी यह भिक्षा, यदि भिक्षा देनी हो तो प्रतिज्ञा करके मुझे शास्त्रार्थ की भिक्षा दे।

मण्डनमिश्र-बहुत अच्छा, मैं शास्त्रार्थ से डरनेवाला नहीं हूँ, मेरे भी भुजदण्ड फड़करहे हैं, तुमको शास्त्रार्थ की भिक्षा देता हूँ, परन्तु इससमय यह अन्न की भिक्षा लेना चाहिये, तिसपर आज मेरी पितृतिथि है सो आपको भी भोजन करानेकी मेरी इच्छा है।

शंकराचार्य- बहुत अच्छा, अरे! इस में हमारी कौनहानि

हैं, हम तो यति हैं, जो हम को निमन्त्रण देगा उसी को पवित्र करने के के लिये जायँगे, परंतु अभी मध्याह्न स्नान करना है उस से निबटकर आता हूँ।

ऐसा कहकर नारायण नारायण कहतेहुए आतेहैं ॥

व्यासदेव—मण्डनमिश्र अब विलम्ब न करो श्राद्ध का कर्म समाप्त होना चाहिये और वह यति अब आते होंगे, सब तयारी है ना ॥

मण्डन मिश्र—सब ठीक है, उनके आतेही आरम्भ होजाएगा।

व्यासदेव—परन्तु ब्राह्मण बैठेंगे कहां ! क्या यही स्थान भोजन करने का है ?

मण्डनमिश्र--नहीं महाराज ? इस पिछले दालानमें भोजन-करना होगा।

व्यासदेव--अच्छातो चलो उधरही चलें।

[ऐसा कहकर सब जाते हैं]

अष्टम दृश्य।

(रेवा नदीके किनारे का शिवालय)

[पद्मपाद, त्रोटकाचार्य आदि शंकराचार्यजी के शिष्य आते हैं]

पद्मपाद—त्रोटकाचार्य ! गुरुमहाराज कहगये थे कि 'मण्डनमिश्र से मिलकर आता हूँ, तुम इस शिवालय में ठहरो' सो अभीतक नहीं लौटे, न जाने क्या कारण हुआ मुझको तो बड़ी चिन्ता होरही है।

त्रोटक—चिन्ता क्यों करते हो ? किसी कारण विलम्ब हो गया होगा, उनको कष्ट पहुँचाने वाले तो त्रिलोकी में कोई हैही नहीं।

[इतनेही में परदेमें नारायण शब्दका उच्चारण होता है]

पद्मपाद--लो महाराज स्मरण करतेही आगये।

(तदनन्तर शङ्कराचार्यजी का प्रवेश)

शङ्कराचार्य-(नारायण नारायण कहकर आसनपर बैठतेहुए) हेशिष्यों! मेरे आनेमें थोडासा विलम्ब होनेसे तुमको अधिक चिन्ता तो नहीं हुई!

पद्मपाद-हेगुरो! आपका वियोग तो क्षणभर के लिये भी हमको असह्य होताहै, फिर इतने समयकातौ कहना ही क्या!

शङ्कराचार्य-अच्छा अब उधरका वृत्तान्त तो सुनो-मैं मण्डनमिश्र के घरके झरोखे मेंको होकर बीच घरमेंही जा उतरा, उस समय वह श्राद्धके काम में लगा हुआ था, फिर मेरे ऊपर दृष्टि पड़ते ही बड़े क्रोधमें भरकर दुर्वचन कहने लगा, तब मैंने भी उसको तैसेही उत्तर दिये, अन्तमें उस से शास्त्रार्थ करनेकी प्रतिज्ञा करवाकर उसकेही यहाँ भिक्षा करके चला आरहा हूँ, अब वह यहाँ आवेगा तब उसका और मेरा शास्त्रार्थ होगा।

त्रोटक-महाराज! आपका और मण्डनमिश्रका शास्त्रार्थ तो बड़ाही अलौकिक होगा, देखिये कब देखनेको मिले!

(इतनेहीमें बहुतसे पण्डितों के साथ मण्डनमिश्र आते हैं)

मण्डनमिश्र-(शंकराचार्यजीके सामने आसन बिछा बैठकर) अजी संन्यासीजी! तुम्हारा शास्त्रार्थका हौंसला देखने आया हूँ, अब शास्त्रार्थ का प्रारम्भ करिये।

शंकराचार्य-(हँसकर) बहुत अच्छा!, परन्तु मैं ऐसे शास्त्रार्थ नहीं करूँगा, निरर्थक शास्त्रार्थ करने की मुझको आवश्यकता नहीं है, पहिले दोनों ओर से कुछ २ प्रतिज्ञा होनी चाहिये तब शास्त्रार्थ होगा।

मण्डनमिश्र–अरे! प्रतिज्ञा की क्या आवश्यकता है? दोनों का शास्त्रार्थ होने पर जो परिणाम निकलेगा वह निकल ही आवेगा।

शंकराचार्य–वाः! ऐसा कभी नहीं होसकता, प्रतिज्ञा विना हुए मैं एक अक्षर भी नहीं बोलूँगा।

मण्डन मिश्र–अच्छा, ऐसा ही सही, लो मैं अपना सिद्धान्त कहकर प्रतिज्ञा करता हूँ उस को सुनो–उपनिषद् भाग, आत्मस्वरूप का वर्णन करनेके लिये नहीं है, किन्तु क्रियाको ही दिखाता है, क्योंकि–शब्द में कोईतो क्रिया दिखाई देती ही है, वह क्रिया आत्मा का स्वरूप कहने वाली सिद्ध नहीं होसकती, कर्मसे ही मुक्ति होती है, इसलिये जबतक जिये तबतक कर्म करने चाहियें यह मेरा सिद्धान्त है, यदि तुम इसका खण्डन करदोगे तो मैं सफेद कपडे उतार कर गेरुआ कपडे पहिन लूँगा और तुम्हारा शिष्य होकर संन्यास धारण करलूँगा, यदि मैं ऐसा न करूं तो अपने बयालीस पूर्वपुरुषों सहित नरक पाऊं, यह मेरी प्रतिज्ञा है, अब तुम क्या प्रतिज्ञा करते हो वह भी बताओ?।

शंकराचार्य– वाः! अब कोई हानि नहीं है, अब मेरीभी प्रतिज्ञा सुनो–"सच्चिदानन्द ब्रह्म एक ही है, अनादि अविद्या केकारण भ्रमसे जैसे सीपीमें चांदी की प्रतीति होने लगती है, तैसेही वह ब्रह्म जगत् के आकार में दीखरहा है, उस ब्रह्मका ज्ञान होनेसे सब प्रपञ्च का लय होजाता है, इस विषय में उपनिषद् प्रमाण है जीव और ईश्वरमें भेद नहीं है कर्मसे कभीभी मुक्ति नहीं मिलसक्ती, विचारके द्वारा आत्मज्ञान से ही मुक्ति मिलती है यही मेरा सिद्धान्त है, यदि तुम इसका खण्डन कर दोगे तो इन गेरुआ वस्त्रों को

त्यागकर सफेद वस्त्र पहिन लूंगा तथा विवाह करके तुम्हारा शिष्य होजाऊंगा और यदि ऐसा न करूं तो मैं भी बयालीस पूर्वपुरुषों सहित नरक में जाऊं।

मण्डनमिश्र–दोनोंकी प्रतिज्ञा तो होहीगई और इन सब सभासदोंने सुनली, अब शास्त्रार्थ छिड़ना चाहिये,

शङ्कराचार्य–नहीं अबभी एक बात रह ही गई, भला यहतो बताओ–मेरा तुम्हारा शास्त्रार्थ बड़ा भारी होगा, इधर प्रतिज्ञा भी होगई, परन्तु शास्त्रार्थमें हारा कौन और जीता कौन, इसका निबटारा करनेके लिये कोई तीसरा मध्यस्थ भी तो होना चाहिये, जोकि–इस सभामें आकर बैठे, नहींतो शास्त्रार्थ करने का फलही क्या होगा ?।

मण्डनमिश्र–अब मध्यस्थ बनने को तीसरा कौन आवे यह तुमही बताओ ?

शङ्कराचार्य–मध्यस्थतो तुह्मारे घरमें ही है, तुह्मारी स्त्री साक्षात् सरस्वती का अवतार है, यह मैं जानताहूँ इस कारण हमारे शास्त्रार्थमें वही मध्यस्थ होनी चाहिये, उसको यहां बुलवाओ।

मण्डनमिश्र–बहुत अच्छा (शिष्यकी ओरको मुखकरके) अरे कृष्णमिश्र ! जा शीघ्रतासे घर तो जा और उससे मेरी आज्ञा कहकर यहां लिवाला।

कृष्णमिश्र–बहुत अच्छा गुरुजी(ऐसाकह परदेके भीतर जाकर और फिर सरस्वतीके साथ आकर उससे कहता है) माताजी ! गुरुजी और संन्यासीजी वह सामने विराज रहे हैं उधरही को चलिये।

सरस्वती–(यति और पतिको प्रणाम करके महाराज ! इस भरी सभा में मुझ अबलाको क्यों बुलवाया है ?

मण्डनमिश्र—इसका उत्तर यह यति ही देंगे, इनसे ही बूझो।

शङ्कराचार्य—सरस्वति ! इधर ध्यान दो, यहाँ तुमको इस कारण बुलवाया है कि—तुम्हारे पतिका और मेरा शास्त्रार्थ होगा, उसमें यदि इन्होंने मुझको जीतलिया तो मैं इनका शिष्य होजाऊँगा और मैंने इनको जीतलिया तो इनको मेरा शिष्य होनापड़ेगा, यह प्रतिज्ञा पहिलेही होचुकी है, परन्तु हारजीत का निश्चय करने के लिये कोई तीसरा मध्यस्थ चाहिये, सो हम दोनोंने इस कार्य के लिये तुम्हें चुना है, अब तुम उस स्थानपर बैठकर हम दोनो में कौन हारता है और कौन जीतता है, इसका निश्चय करो।

सरस्वती—महाराज ! मैं स्त्री हूँ, तुम्हारे इस अपार शास्त्रार्थ में भला मैं क्या समझसकूँगी ? इसकारण मैं मध्यस्थ बनने के योग्य नहीं हूँ।

शङ्कराचार्य—सरस्वति ! तुम मुझको क्या सिखातीहो ! मैं तुमारी योग्यता को जानता हूँ, तुम सब विद्याओंकी माता हो फिर ऐसी कौन विद्याहै कि जिसका हम शास्त्रार्थ करें और-उसको तुम जानती नहीं हो ! इसकारण तुमारा यह कहना ठीक नहीं है।

सरस्वती—आप जो कुछ कहते हैं, यह कदाचित् ठीकहो परन्तु एक दूसरी अड़चन और है, मेरे पतिके साथ शास्त्रार्थ होगा उसमें मैं मध्यस्थ बनूँ यह बात ठीक नहीं है, क्यों कि—यदि उनकी जयहुई और मैंने उचित समझकर यही बात कही तो मुझको पक्षपातका दोष लगेगा और आपकी जयहुई तब ऐसा कहनेपर, पति से द्रोहकरनेका कलङ्क लगेगा इसकारण आप इस झगड़े में मुझ को न फँसावें।

शंकराचार्य-हमारे शास्त्रार्थको समझनेवाला तुमको छोड़ कर दूसरा और कोई है ही नहीं तथा पक्षपातको छोड़कर वर्त्ताव करनेवाले मध्यस्थ को कोई दोष देही नहीं सकता।

सरस्वती-औरभी एकबात कहनेको रहगई, अर्थात् घर में अग्निहोत्र है, कामकाज की बहुतसी अड़चन है तिसपर भी पति यहाँ शास्त्रार्थ में लगजायँगे, इसकारण मुझे तो घर अवश्यही रहना पड़ेगा, अतः मैंने एकयह युक्ति विचारीहै कि-मैं आप दोनोंके कंठ में एक२ फूलोंकी माला पहिराये देती हूँ फिर आप शास्त्रार्थ का आरम्भ करिये, शास्त्रार्थ करते २ जिस की पुष्पमाला कुम्हलाजाय उसीको हाराहुआ और जिस के कण्ठ की पुष्पमाला ज्यों की त्यों बनीरहे उसको जीतनेवाला समझलेना, ऐसा होनेपर आपको मध्यस्थ की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

शंकराचार्य-धन्य! सरस्वती धन्य!! अच्छीयुक्ति निकाली वास्तव में तू बड़ी चतुर है अच्छा तो वह पुष्पमाला दोनोंको पहिरा दे और तू जा।

सरस्वती-बहुत अच्छा (ऐसा कहकर दोनों के कण्ठमें पुष्पमाला पहिराकर जाती है)।

मण्डनमिश्र-क्यों यतिजी! सब तयारी तो होही गई, अब शास्त्रार्थ का प्रारंभ होना चाहिये।

शङ्कराचार्य-अब कुछ चिन्ता नहीं, मेरा सिद्धान्त तुमने सुनही लिया, पहिले आपही प्रश्न करें।

मण्डनमिश्र-अच्छा संन्यासीजी! आप जीव औ ईश्वर की एकता मानते हैं, परन्तु मुझेतो यह ठीक नहीं मालूमहोता?

शङ्कराचार्य-श्वेतकेतु आदि शिष्यों से उद्दालक आदि

महर्षियोंने जीव और ईश्वर की एकता कही है, ऐसा वेदमें कहा है, यही प्रमाण है।

मण्डनमिश्र–वेदमें लिखेहुए "तत्त्वमसि" आदि वाक्य "हुं फट्" आदि की समान केवल जपकरने के लिये ही हैं, उनका और कोई अर्थ नहीं है।

शङ्कराचार्य–"हुं फट्" इत्यादि वाक्यों में, अर्थ कुछ है ही नहीं इसकारण ज्ञानी पुरुषोंने उनको जपके लिये नियत करलिया है और "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों का अर्थ तो स्पष्ट प्रतीत होता है, फिर वह जपके लिये हैं यह बात कैसे कही जासकती है।

मण्डनमिश्र–यदि इस वाक्य में जीव और ईश्वर की एकता का अर्थ भासता है तो वह यज्ञ करनेवाले की प्रशंसा समझना चाहिये, क्योंकि–तुम उसका वाक्यार्थ–जीव और ईश्वर की एकतापर करत हो और यह बात किसी की बुद्धि में जम नहीं सकती इसकारण यज्ञ करनेवाले की प्रशंसा पर अर्थ करना ही ठीक है, इसकारण सब उपनिषद् कर्मकी पूर्णताको दिखानेवाले हैं, यही सिद्धहोता है।

शङ्कराचार्य–"आदित्यो यूपः" इत्यादि कर्मकाण्ड में के वाक्यों का अर्थ कर्मकी प्रशंसा में करना ठीक है, तैसेही ज्ञान काण्डमें के "तत्त्वमसि" आदि वाक्यों का अर्थ करने में कोई प्रमाण नहीं है।

मण्डनमिश्र–तो "मनकी उपासना ब्रह्मरूपसे कर" ऐसा कहने के लिये जैसे "अन्नंब्रह्म" इत्यादि वाक्य हैं तैसेही उपासनापरक अर्थहो, परन्तु ऐक्य अर्थ करना ठीक नहीं है।

शङ्कराचार्य–मनकी ब्रह्मरूप से उपासना करे, इत्यादि विधि वाक्य के अनुसार "तत्त्वमसि" इस वाक्य में विधि नहीं है, फिर उपासनापरक अर्थ कैसे होसकता है?

मण्डनमिश्र--तत्त्वमसि आदि वाक्यों में विधि अर्थ स्पष्ट नहीं दीखता है तब भी विधि की कल्पना करना चाहिये, "रस्सी है साँप नहींहै" ऐसा कहतेही साँपकी भ्रांति दूर हो कर उसी समय भय जाता रहताहै, तैसा 'तत्त्वमसि' इस वाक्य को सुनतेही नहीं होता है तथा सुख दुःख आदि होते हैं, इस के सिवाय तत्त्वमसि वाक्य के श्रवणके अनन्तर मनन निदिध्यासन आदि कहे हैं, इसकारण तत्कालफलनहीं होता है अतः उपासना परक विधि अर्थ ही कर लेना चाहिये।

शङ्कराचार्य--उपासनापरक अर्थ करने से स्वर्ग अथवा ध्यान, इसप्रकार मोक्षको मानसिक कृत्रिमपना प्राप्तहोगा।

मण्डनमिश्र--अच्छा उपासनापरक अर्थ नहीं सही तो--जीव को ब्रह्मकी उपमादेते हैं, ऐसा अर्थ करलेना चाहिये।

शङ्कराचार्य--जीवको जो ब्रह्मकी उपमा देते हो तहाँ यदि चेतनता के विषय में उपमा कहोगे तो इस सर्वत्र प्रसिद्ध अर्थ के उपदेश की आवश्यकताही क्या है? और यदि सर्वज्ञपने के गुणोंकी उपमा कहोगे तो जीव के सर्वज्ञ कहने का दोष तुम्हारे ही मतमें आवेगा।

मण्डनमिश्र--सर्वज्ञपना आदि गुणमाया से ढकरहे हैं फिर उपमालेने में हानि ही क्या है?

शङ्कराचार्य--यदि ऐसा है तबतो--जीव ईश्वर के भेदभाव की शंका माया की करीहुई है, इस बातको तुम अपने आपही मानरहेहो फिर भी "तत्त्वमसि" इस वाक्य का अर्थ एकता को जताने में नहीं है, ऐसा खोटा आग्रह तुम विद्वान् होकर क्यों करतेहो?

मण्डनमिश्र--ऐसी एकता यद्यपि भासती है, तथापि मैंही ईश्वर हूँ, ऐसी प्रतीति किसी को नहीं होती है, इसकारण

"तत्त्वमसि" आदि वाक्यों को केवल जपके निमित्त ही मानना उचित है।

शङ्कराचार्य--यदि इन्द्रियों के द्वारा भेदज्ञान सिद्ध होजाय तो अभेदका वर्णन करनेवाली श्रुतियों में बाधा पड़े और ऐसा होता है नहीं, क्योंकि--वाक्य के ज्ञानको इन्द्रियें जान ही नहीं सकतीं।

मण्डनमिश्र--इन्द्रियें जान कैसे नहीं सकतीं? मैं ईश्वर से निरालाहूँ, ऐसा भान क्या जीवको नहीं होता है?

शङ्कराचार्य--अनात्म पदार्थों का भान होजाय, परन्तु आत्मा इन्द्रियों से कभी नहीं जानाजासकता।

मण्डनमिश्र--आत्मा और चित्त, इन दोनोंही को द्रव्य माना है, फिर आत्मा इन्द्रियों से नहीं जानाजाता है, यह कहना ठीक नहीं है।

शंकराचार्य--आत्मा व्यापक और सूक्ष्म है, इन दोनों ही कारणों से इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जासकता, जिस के अवयव (भाग) होसकें वह सावयव पदार्थ ही इन्द्रियों से जाना जासकता है।

मण्डनमिश्र--आत्मा वेद्य (जानने योग्य) नहीं है तो श्रुतियों ने जीवात्मा और परमात्मा की एकता कैसे जताई है?

शंकराचार्य--श्रुतियों ने "अविद्योपाधि जीव" और "मायोपाधि ईश्वर" ऐसा भेद कहकर फिर दोनों की उपाधियों का त्याग कहा है तिस से आपही एकता सिद्ध होजाती है, इस कारण आत्मा वेद्य नहीं है।

मण्डनमिश्र--जीव और ईश्वरको औपाधिक (मिथ्या) कहते हो तो "द्वा सुपर्णा" इत्यादि अनेकों वेदवाक्यों में जीव और

ईश्वर दोनों का स्वरूप क्यों वर्णन किया है ? और आत्मा के सिवाय अन्य पदार्थों को अचेतन कहोगे तो जीव और ईश्वर के विषय में प्रत्यक्ष चेतनता क्रिया कैसे दीखती है? इस का ठीक २ उत्तर बताओ।

शंकराचार्य–श्रुतियों ने, जगत् में अज्ञान के कारण जो भेद की प्रतीति है उसका वर्णनमात्र करके, वह भेद झूंठा, माया का रचाहुआ है यह बात दिखाकर अन्त में अभेद का ही वर्णन किया है, तिस से भेद दिखानेवाली सब श्रुतियें बाधित होगईं। अब जीव तथा ईश्वर के विषैं चेतनता रूप कर्त्तापने का जो धर्म दीखता है वह मिथ्या है तथा वह जीव और ईश्वर का अपना नहीं है किन्तु जैसे तपायाहुआ लोहे का गोला जलाता है, यहां जलाने का धर्म अग्नि का है, लोहे के गोले का नहीं है परन्तु लोहेका गोला जलाता है, ऐसा झूटे ही समझा जाता है तिसी प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रियों में तथा मन आदि अन्तःकरण के विषय में जो ज्ञान का व्यापार दीखता है वह सब आत्मा में ही होता हे और इन्द्रिया में जो उस ज्ञान की प्रतीति होती है वह मिथ्या है, जीव और ईश्वर यह दोनों परछाहीं और उष्णता (गरमी) की समान हैं, जैसे इन दोनों का कारण सूर्य इन दोनों से निराला ही है तैसे ही आत्मा सब से भिन्न होकर सब का कारणरूप है, यही सत्य तत्त्व है और इसका ज्ञान नहोने का ही नाम अज्ञान है, इस अज्ञान से ही बन्ध शोक आदि होते हैं और हैं ऐसा समझने को ही ज्ञान कहते हैं, इस ज्ञान से सकल शोक बन्ध आदि का नाश होकर मोक्ष मिलता है अर्थात् प्राणी जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है, इस ज्ञानका

मुख्य अधिकारी श्रुतियों के कथन के अनुसार शान्त, दांत आदि गुणों से युक्त होना चाहिये, ऐसे अधिकारियों को विचार करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। कर्म उपासना आदि सब चित्त निर्मल होने के साधन हैं, इन से मोक्ष नहीं होता है, इस कारण हे मण्डनमिश्र! अपने कर्मों के दुराग्रह को छोडकर विचार करो तब-यह संसार मिथ्या भासरहा है, केवल अधिष्ठान आत्मा ही सत्य है उसी के कारण यह संसार भी सत्य सा दीखता है, जैसे जल में तरंगों या सुवर्ण में गहनों की प्रतीति होती है, उन में सत्य जल और सुवर्ण ही होते हैं, तरङ्ग और गहनों के आकार मिथ्या होते हैं तैसे ही इस जगत् में सब आकार मिथ्या हैं सत्य एक सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है, यह बात तुम को प्रत्यक्ष भासने लगेगी और तत्काल मुक्त होजाओगे।

मण्डनमिश्र-परन्तु मुझे प्रतीत होता है अब सायंसन्ध्या का समय होगया, इसलिये आज यहाँ ही शास्त्रार्थ रोकदेना चाहिये, कलको मैं नित्यकर्म से निबटकर फिर यहाँही आऊँगा तब शास्त्रार्थ का प्रारम्भ होगा।

शङ्कराचार्य-ठीक है, आप सायंसन्ध्या के लिये जाइये, हमभी अब नदी पर जाते हैं।

ऐसा कहकर सब जाते हैं

अष्टम दृश्य।

(तदनन्तर पण्डित यज्ञदत्त और पण्डित ब्रह्मानन्द का प्रवेश)

यज्ञदत्त- क्यों ब्रह्मानन्दजी! आज आठ दिन होगये, तुम्हारा कहीं पताही नहीं लगा एक दोबारमैं तुम्हारे घरभी गया परन्तु तहाँ भी भेट नहीं हुई, ऐसे किस, आवश्यक कार्य में लगरहेथे?

ब्रह्मानन्द--वास्तवमें आजकल मेरे न मिलनेका एक ऐसाही कारण है, आजकल मण्डनमिश्र और शङ्कराचार्यजीका शास्त्रार्थ होरहाहै ना। बस वही आनन्द देखनेके लिये मैं दोनो समय शिवमंदिर में जाता हूं।

यज्ञदत्त--मैंने भी यह समाचार, यहांतक सुनाथा, कि--सरस्वती ने उन दोनों के कण्ठ में पुष्पमाला पहिराई, परन्तु यह नहीं मालूम आगेको क्या हुआ, इस कारणही मैं तुम्हारे पास आया हूं।

ब्रह्मानन्द--हां तो आगे दूसरे दिन से उन दोनो का शास्त्रार्थ होनेलगा, क्या कहूं, उन दोनो की वाणी का कैसा विलक्षण प्रवाह चलता था। बड़े २ पण्डित बैठेहुए थे परंतु कितनेही स्थान पर उनकी भी समझ में नहीं आताथा कि यह दोनो क्या कहरहे हैं, दोनोही अस्खलित बोलनेवाले थे मण्डनमिश्र का बोलना तो मैंने पहिले भी कितनेही वार सुना था परन्तु इस शास्त्रार्थ के बोलने के सामने वह सौवां भाग भी नहीं था, वह संन्यासी तो बड़ेही विलक्षण हैं, एक वार मण्डनमिश्र के मुख से प्रश्न निकला कि--तत्काल विना विचारेही समाधान करके उसपर अपनी कोटी करदेते हैं, इस प्रकार उस शास्त्रार्थ के समय सुनने वालों को भी तो अपने शरीर का भान नहीं रहता है, सब सभा तसवीर में खिचीहुई सी निश्चल बैठी रहती है।

यज्ञदत्त--अच्छा यहतो बताओ, इस शास्त्रार्थ को दिन कितने होगए और किसरीति से होता है?

ब्रह्मानन्द--प्रतिदिन दो घड़ी दिन चढ़े शास्त्रार्थ का प्रारम्भ होता है, इससे पहिले दोनो महात्मा अपने स्नान संध्या आदि नित्य अनुष्ठान से निबट लेते हैं, इस प्रकार

मध्यान्ह काल पर्यन्त बराबर शास्त्रार्थ चलता रहता है,। मध्यान्ह के समय सरस्वती शिवालय में आकर पति को भोजनके और यतिको भिक्षाके लिये लिवाने को आतीहै तब शास्त्रार्थ बन्द होकर दोनो भोजनको जातेहैं, फिर कुछकाल विश्राम होकर सूर्यास्तपर्यन्त शास्त्रार्थ होता रहताहै,ऐसे आज छः दिन बीतचुके।

यज्ञदत्त–परन्तुशास्त्रार्थमें हारता हुआ पक्ष किस का है.इस कातो अनुमान होगया होगा,मित्र ! यदि वह संन्यासी हारगयातबतो बडी मौजहोगी ? मैंतो दशसहस्र ब्राह्मणोंको जिमाऊँगा।

ब्रह्मानन्द–छिःछिः ऐसा विचारतो स्वप्नमें भी न करना वह संन्यासीतो साक्षात् बृहस्पति आजायँगे तो उनको भी विनाजीते नहीं छोडेगा फिर इनकी तो बातही क्या ? तुमने उन का भाषण सुना नहीं है,तबही ऐसा कह रहेहो, आजतक मेरी भी कर्ममार्ग पर बडी भारी श्रद्धा थी और मैं संन्यासियों का बडा तिरस्कार करताथा,परन्तु जबसे उन महात्मा संन्यासी के भाषणको सुनरहाहूँ तबसेमुझे अपना वह समझना भ्रमसे भरा हुआ प्रतीत होनेलगाहै,अधिक क्या कहूँ जब उन महात्मा संन्यासी जीके मुखसे मोतीसे स्वच्छ वाक्य निकलतेहैं उससमय चित्त पर वैराग्यही उत्पन्न होता चलाजाता है,ऐसी इच्छा होती है कि–सब झगडों को छोड़कर इनका शिष्य बन इन ही के साथ रहूँ।

यज्ञदत्त–तबतो तुम्हारे इस कहने से स्पष्ट यही प्रतीत होता है कि–मण्डनमिश्र का ही पक्ष गिरताहुआ है।

ब्रह्मानन्द–मेरी समझ में तो परिणाम यही होगा, मैंने खूब ध्यान देकर देखा है, मण्डनमिश्र के कण्ठमेंकी पुष्पमाला

कुछ २ कुम्हलातीसी जातीहै,कल सायंकालतो वह बहुतही कुम्हलाईहुई प्रतीत होनेलगी थी,मैं निश्चयरूप से कहताहूं कि—प्रायः आजही शास्त्रार्थ समाप्त होजायगा,क्योंकि—मण्डनमिश्र के कण्ठमें की पुष्पमाला आजसे अधिक निभाती नहीं प्रतीत होती।

यज्ञदत्त—तब तोभी आज मैंभी अवश्य आऊंगा, क्योंकि आजतक आनन्दतो दुर्दैववश हाथसे गयाही।

ब्रह्मानन्द—चलो चलो तो शीघ्रताकरो, अब अधिक देर नहीं है, वह देखो सब पण्डितोंकी टिकलियें की टिकलियें चली जारहीहैं और शास्त्रार्थ आरम्भ होनेका घण्टाभी बजनेलगा, वह देखो प्रातःकाल के स्नान संध्याआदि विधि से निवटकर प्रभातकाल के सूर्यसे दमक रहे हैं,जिनके आगे पीछे सहस्रों पण्डितोंकी भीड़है और जिनके कण्ठमें की पुष्पमाला सन्निपातहुये रोगीकी नाड़ीकी समान कुछएक चमक रही है ऐसे मण्डनमिश्रजी शिवमंदिरकी ओर को जारहे हैं इसकारण अब हमकोभी चलने में देरीकरना ठीक नहीं है;

(ऐसाकहकर दोनों झपटेहुये जातेहैं)

दशम दृश्य।

स्थान—शिवालय।

शिष्यों सहित श्रीशंकराचार्यजी आकर बैठते हैं फिर अनेकों पण्डितों के साथ मण्डनमिश्र भी आकर अपने स्थानपर बैठते हैं।

शङ्कराचार्य—मण्डनमिश्र! मेरा और तुम्हारा शास्त्रार्थ छः दिनसे बराबर चलरहा है, आज सातवाँ दिन है, तुमने जो जो शङ्का करीं,उन सबको ही मैंने दूर करदिया,फिरभी तुम हठ करके अपने मतको नहीं छोड़ते हो, यहक्या बात है? अच्छा औरभी तुम्हारे जो प्रश्न हों उनको कहकर अपने मन की निकाललो।

मण्डनमिश्र–हेसन्यासी ! तुम यह सिद्ध करतेहो कि,जीव और ईश्वरमें अभेद है, फिर संसारमें कितनेही जीव सुखी और कितनेही दुःखी देखनेमें आते हैं, यहभेद क्योंहै ?

शङ्कराचार्य–बहुतअच्छा प्रश्नकिया, इसका तत्त्वभी तुम्हें बताताहूँ सुनो–अनिर्वाच्य, अनूपमआत्माकी तुलना (समता) तो किसीसे की ही नहींजासकती,क्योंकि–आत्मस्वरूप आकाशकी समान व्याप्त है, तथापि घटाकाश (घड़ेके भीतरका आकाश) जलाकाश (जलमेंका आकाश) और महाकाश (सब स्थानमें व्याप्त आकाश),यह मानो भिन्न२हैं ऐसे प्रतीत होतेहैं, घट बुद्धिसे घटमें का आकाश स्वतन्त्रसा प्रतीत होताहै,तैसेही औरभी,परन्तु उस घटके फूटते ही वह आकाश कहाँ चलाजाताहै ?, इसके सिवाय घटके होनेपर तो घटाकाश निराला होताहै, क्योंकि–घटके व्यवधानसे उसकी प्रतीति होतीहै परन्तु उस आकाशमें, घटाकाश जलाकाश होनेसे क्या कोई विकार आताहै ? कुछभी विकार नहीं आता तैसेही परमेश्वर के स्वरूपका क्रमहै । अब कोई जीव सुखी और कोई दुःखी क्यों हैं? यह जो तुम्हारा प्रश्न है इसकाभी उत्तर सुनो–यह सुख दुःख आदि भेद उस निरंजन परमात्माके विषै है ही नहीं,मायासे ढकेहुए जीवका यह भ्रमहै । देखो–बिल्लौर पत्थर स्वभाव से स्वच्छ सफेद होता है, उसीको लाल कपड़ेपर रखदो तो वह लाल२ दीखने लगताहै और नीले वस्त्रपर रखदो तो नीला२ दीखने लगता है, परन्तु वास्तव में उस पत्थरके श्वेतवर्णमें कुछ विकार नहीं होता है, तैसेही सुख और दुःख यह किसी रंगकी समान हैं और उस बिल्लौरकी समान स्वच्छआत्मापर ढकेहुये हैं इसकारण मूढपुरुषों को वह स्वच्छआत्मा सुख दुःख

वाला दीखनेलगता है, वास्तवमें सुख दुःख रूप विकार आ-त्मामें जराभी नहीं हैं,किन्तु सुख दुःख आदि बुद्धिके धर्महैं।

मण्डनमिश्र-अच्छा तो तुम यह जो कहते हो कि-जीवकी मुक्ति होती है, वह कैसे प्राप्त होती है और मुक्तिका लक्षण क्याहै ?

शंकराचार्य-यह सब जीव वासनारूप सूतमें गुथे हुये जन्म मरण आदि उपाधियोंका अनुभव कररहेहैं, उस वासना का जड़मूल से नष्ट होनाही मुक्ति कहलाती है।

मण्डनमिश्र-शंकराचार्य ! इस विषयमें तो मैं तुमको जीते लेताहूं, अरेभाई ! जब यह कहतेहो कि-वासनाके नष्टहोने पर मुक्ति मिलती है,तबतो निद्राके समयभी वासना नष्ट हो-जाती हैं, उससमय जीवकी मुक्ति क्यों नहीं होती ? उसको फिर संसारचक्रमें क्यों पड़ना पड़ता है ?।

शंकराचार्य-धन्य ! मण्डनमिश्र धन्य !! बड़ा अच्छा प्रश्न किया अच्छातो सुन-वासना जड़मूल से नष्टहोनी चाहिये, यह बात मैंने कहीथी,यह तो तुम्हारे ध्यानमें होगाही ! वास-ना नष्टहुये बिना निद्रातो आवेगीही नहीं, यह तो सिद्धान्त है,परन्तु उससमय समूल नष्ट नहीं होतीहैं' किन्तु जैसे बिनौले में वस्त्र गुप्तरूप से होताहै तैसेही यह सबजगत् उससमय वास-नामें लीन होजाताहै, फिर वह वासना अज्ञान में गढ़े हुए जीवके समीप, बिनौले की समान बीजरूप होकर लीन हो-जाती है। यदि कहो कि-बिनौले में वस्त्रकैसे रहता है तो सुनो-बिनौले को बोनेपर उसमें अंकुर निकलताहै, तिससे वृक्षहोकर फूलआतेहैं फिर फल होकर उसमेंसे कपास निक-लतीहै फिर उसके रुई-सूत आदि होकर वस्त्र बनते हैं अब कहो कि उसवस्त्रका अधिष्ठान बिनौला रहा या नहीं? ऐसे

ही यह सवजगत् वासना में रहता है फिर इसजीव की जाग्र-अवस्था होनेपर उसवासना में अंकुर फूटकर यह विश्व भा-सने लगता है। अब यदि उनही बिनौलोंको भूनलिया जाय तो उन मैं से कभी भी अंकुर नहीं निकलेंगे, तैसे उसवासना को ज्ञानाग्नि से भूनदेनेपर यह संसाररूपी अं-कुर उसमें से कदापि नहीं निकलेगा और मिथ्या मान नष्ट होजायगा इसीका नाम मुक्ति है।

मण्डनमिश्र--हे संन्यासीजी! उस मुक्ति के अनुभव का आनन्द कैसा होता है?

शंकराचार्य--अजी मण्डनमिश्र! मुक्ति में जो अखण्ड आनन्द का अनुभव होता है वही है।

मण्डनमिश्र--वह आनन्द क्या विषयों के आनन्द से अलग कोई और प्रकार का है?

शंकराचार्य--नहीं नहीं यह विषयों के आनन्द भी सब उसी आनन्द में का बहुत थोडा भाग हैं, आत्मस्वरूप के अनुभव के विना तो आनन्द होही नहीं सकता।

मंडनमिश्र--तो फिर विषयों के भोग से जो आनन्द होते हैं, वह झूटे हैं क्या?

शंकराचार्य--अजी! वह भी ब्रह्मानुभवरूप आनन्दही है, आत्मस्वरूप के अनुभव के बिना तो आनन्द होही नहींस-कता, ऐसा मैंने अभी तो कहा था, उसको मैं सिद्ध करता हू सुनो--जगत् की मूल वासना के धर्म यह हैं--वासना यह चाहती है कि--जीव के पास से निकलकर किसी विषय पर झपट्टा लगाऊं और उस विषय को पाकर फिर पीछेको लौटूं और फिर दूसरे विषय की ओर को दौडूं, इसप्रकार वासना के अनेकों चक्र चलते हैं,इसी को अन्तःकरण की वृत्तिकहते

हैं, अब उदाहरण के लिये एक अन्न विषय को लेलीजिये, वासना जीवसे निकली और अन्न पर चली, तहाँ उसको अन्न मिला, तब वह पीछेको लौटी, उस समय पीछेको लौटते में उस वासना की और आत्माकी सन्मुखता होती है और ब्रह्म का प्रतिबिम्ब उस वासना में पडता है उसके साथ ही जीवको आनन्द होताहै' परन्तु यह मूढ उसको भी विषयानन्द ही समझता हुआ तिस ब्रह्मानन्दको भूला रहता है, तदनन्तर फिर वासना अपने व्यापार में लगजाती है, इसप्रकार विषयानन्द और आत्मानन्द का भेद है, परन्तु योगी विषयानन्द को भी ब्रह्मानन्द ही जानता है, ब्रह्मानन्द के बिनाआनन्द है ही नहीं, क्या मेरा यह कहना असत्य है ?

इतने ही में मण्डनमिश्र की समाधि लगती है इसकारण वह कुछ उत्तर नहीं देसकते हैं और कण्ठ में की माला कुम्हलाती है तब सब लोग- 'जीतलिया२, वाह वाह' ऐसा कहकर तालियें बजाते हैं और श्रीशंकराचार्य जीके ऊपर फूलों की वर्षा होती हैं।

शंकराचार्य-(आनन्दसे) शिष्यो ! देखो इस से उत्तर न होसका, आनन्द का स्वरूप सुनाते ही समाधि लगगई।

पद्मपाद-महाराज ! क्या अबभी हारजाने में कुछ सन्देह होसकता है ? मण्डनमिश्र के कण्ठ में की पुष्पमाला को तो देखिये, कैसा मुरझागई है।

शंकराचार्य-इनको समाधिसे जगाकर सचेत करना चाहिये (इतना कह मण्डन मिश्रको झकझोरकै सावधान करते हैं) क्यों मण्डनमिश्र ! यह क्या दशा है ? ऐसे मौन क्यों बैठे हो ? और कोई प्रश्न करो, इस तुम्हारे चुप साधने पर यह तुम्हारे साथ के ही पण्डित हास्य करते हैं।

तदनन्तर मण्डनमिश्र और सब पण्डित श्रीशंकराचार्यजी के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं।

शंकराचार्य-कहो, कहो ! चित्तमें कोई शंका शेष न-रक्खो,

क्योंकि–जन्म मरण का मूल कारण शंका ही है।

मण्डनमिश्र–सुनिये सद्गुरो ! सकल वेदान्त का वर्णन करनेवाले भगवान् वेदव्यासजी हैं और कर्मकाण्ड का उपदेश देने वाले उनही के शिष्य जैमिनिजी हैं, सो अपने गुरु के प्रतिकूल यह कर्ममार्ग जैमिनिजी ने क्यों चलाया और अपने मतके विरुद्ध मत चलानेवाले शिष्यसे जैसे गुरु का मन खट्टा होजाता है तैसे श्रीवेदव्यास जीकी प्रीति जैमि-निजी के ऊपर से क्यों नहीं हटी ? अबतक जैमिनिजी उन के प्यारे कैसे बने हुए हैं ? मुझको यह बडा सन्देह है ।

शंकराचार्य–अजी मण्डनमिश्र ! आज तुम ने जो जो शंका करीं वह बहुतही अच्छी हैं, अच्छा अब इस शंकाका भी उत्तर देता हूँ सुनो–जैमिनिजी का मत गुरु व्यासजी के प्रतिकूल नहीं है किन्तु अनुकूल ही है; क्योंकि–कर्म के विना चित्त-शुद्धि नहीं होसकती और चित्तशुद्धि के विना आत्मविचार में श्रद्धा ही नहीं होसकती, इसकारण जैसे छत्तपर चढने में सरलता होने के लिये सीढियें बनाते हैं तैसेही कर्ममार्ग को ज्ञानमार्ग की सीढी समझो, इस के सिवाय यह बात भी है कि–यदि कर्ममार्ग न होता तो मूढपुरुषों की व्यर्थ ही अधो-गति होती, इसकारण जैमिनिमुनि ने सब सांसारिक जीवों पर कृपा करने के लिये यह कर्ममार्ग चलाया है, अब तुम आपही विचार देखो कि–जैमिनिमुनि का यह मत गुरु के प्रतिकूल है या अनुकूल ? और इसका प्रमाण तो तुम अभी पाचुके, क्योंकि–अबतक कर्म करने से तुम्हारा हृदय शुद्ध होगया था तबही तो आनन्द का यथार्थ वर्णन होतेही तु-म्हारी समाधि लगगई ।

मण्डनमिश्र–(हाथजोडे हुए ऊपरको नेत्र करके) हे जै-

मिनिजी ! इस मेरी शङ्का का निवारण एक वार आप प्रत्यक्ष आकर कीजिये ॥

(तदनन्तर परदे के भीतर शब्द होता है कि-अरे मण्डनमिश्र ! शङ्कराचार्य जी जो कुछ कहते हैं वह ठीक है, अन्तःकरण की शुद्धि होकर ज्ञानमार्ग का अधिकारी होने के लिए ही मैंने कर्म मार्ग चलाया है ॥

मण्डनमिश्र-(शंकराचार्यजी के चरण पकड़कर) महाराज ! आप धन्य हैं और आप के चरणों की कृपा से अब मैंभी धन्य होगया, अवतक मैं माया के जञ्जाल में पड़ कर भ्रान्तबुद्धि से वृथा ही कल्पनाएँ कररहा था, परन्तु आपने पधार कर उचित उपदेश दे मेरा उद्धार करदिया, यह मेरा थोड़ा सौभाग्य नहीं है, हे गुरो ! अव विलम्ब न करके शीघ्रही मुझको संन्यासी वना लीजिये, जिससे कि-मैं इस संसार के जञ्जाल से छूटजाऊं, क्योंकि अव मुझको यह सव असार दीखता है, मैंने मन में पक्का सङ्कल्प करलिया अव मुझको न घर का ध्यान है, न धन की चिन्ता है और स्त्री का मुख देखने की भी इच्छा नहीं है, अव आप देर न करिये, कोई हैरे ! नाई कोतो बुलाला ॥

(इतना सुनकर शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्यजी वड़े आनन्द के साथ नारायण नारायण शब्द की ध्वनि करते हैं और इतनेही में मण्डनमिश्र की स्त्री सरस्वती आती है ॥

सरस्वती-(पति की ओर को देखकर) हर हर, हे हृदय नाथ ! आज आप हारगए क्या ? अच्छा (शङ्कराचार्य जी की ओर को) संन्यासी जी ! अव आगे के लिये क्या होरहा है

शङ्कराचार्य-सरस्वती ! तेरेपति को मैंने जीत लिया, सो अव जैसी प्रतिज्ञा होगई थी, उसके अनुसार तेरेपति

को संन्यासी बनाता हूँ, इस विषय में तूभी इनको आज्ञा दे, क्योंकि--तेरे ऋण से भी यह मुक्त होचुके हैं ॥

सरस्वती--वाह संन्यासी जी वाह ! मेरेपति को पूरा २ विना जीते हुएही संन्यास दिये देतेहो ॥

शंकराचार्य--जीता कैसे नहीं ! इस बात को अपने पति सेही बूझले, और तूने मेरे और इनके कण्ठ में जो एक २ माला डालदी थी, सो इनके कण्ठ में की माला कोभी देख ले कैसी मुरझागई और मेरेकण्ठ में की माला देख जैसी की तैसी बनीहुई है, इसपर भी क्या तुझको इनके हारने में कुछ सन्देह है ?

सरस्वती--अजी संन्यासी जी ! कहाँ भूले हो ! क्या तुम यह नहीं जानते कि--स्त्री पति दोनोंको मिलाकर शास्त्र ने एक मूर्ति बताई है, फिर मुझको विना जीते मेरे पति को पूरा २ कैसे जीसकते हो ?, अभी तो तुम ने आधे भागको ही जीता है, इसलिये चाहे तो आप आधे शरीर को अभी संन्यास देदीजिये, परंतु बाएँ अङ्ग को हाथ नहीं लगाने-दूँगी, पहिले मुझे जीतलो, फिर जो चाहे सो करना ।

शंकराचार्य--सरस्वती ! जैसा तू कहरही है, ऐसा करना तो हमारे संन्यास आश्रम के प्रतिकूल है, क्योंकि-संन्यासि-योंको तो स्त्रियों से बात चीत करने तक का निषेध है ।

सरस्वती--अजी ! यह तुम कैसी अज्ञानियों केसी बातें कररहे हो ! अद्वैतवाद तो संन्यासी चाहे जिसके साथ कर-सकता है, इसका शास्त्रने कब निषेध किया है ? पहिले याज्ञ-वल्क्यजीने गार्गीके साथ प्रश्नोत्तर किये ही हैं,ऐसे ही अनेकों दृष्टान्त मिलजायँगे, इस लिये मैं स्पष्ट रूप से कहती हूं कि जबतक मुझको नजीत लोगे तबतक मैं अपने पति को संन्यास न देनेदूंगी ॥

शंकराचार्य--(मन में) यह तो वड़ा उलझट्टा पडा यदि इससे शास्त्रार्थ नहीं करता हूं तो जीता हुआ मण्डन मिश्र हाथ से निकला जाता है तथा मेरे काम में गडवडी पडती है और यदि शास्त्रार्थ करता हूं तो लौकिक में विरुद्ध होगा (विचार कर) अच्छा चाहे कुछहो, शास्त्रार्थ तो इसके साथ करूंगाही, मण्डन मिश्र को शिष्य किये विना कभीभी नहीं छोड़ूंगा (प्रकाश रूप से) वहुत अच्छा सरस्वती ! तेरेचित्त में शास्त्रार्थ करने की इच्छाहो तो सामने आकर वैठ और जो कुछ प्रश्न करने हों सो कर ॥

सरस्वती--(सन्मुख आकर वैठकर) अजी संन्यासजी तुम्हारे मत में यह संसार मिथ्या है, परन्तु यह वात समझ में नहीं आती, सो यह असत्य किस प्रकारहै ? इसको दृष्टांत देकर समझाइये ॥

शंकराचार्य--संसार सत्य कैसे है इस वात को पहिले तूही सिद्ध कर तव मैं उसका खण्डन करूँगा ॥

सरस्वती--अजी ! सत्य होनेमें तो और किन्हीं कारणों की आवश्यकता ही नहीं है, जव कि--यह सव समय एकसा दीखता है तव और कौनसा प्रमाण चाहिये ?

शंकराचार्य--सवकाल में एकसा दीखने वाला कहती है, यही ठीक नहीं है, यदि सवकाल में एकसा दीखता तो इसको मिथ्या कौन कह सकता था ?

सरस्वती--तो तुम्हारे मत में, जगत् का अनुभव सदा नहीं होता है ? भला सिद्ध करो यह कैसे होसकता है ?

शंकराचार्य--तू जव सोती है तव तुझको कभी २ स्वप्न भी दीखते ही होंगे ! उस समय क्या तुझको इस जगत् का कुछ अनुभव होता है ? और जव तू सुषुप्ति अवस्था में होती है

उस समय तो वह स्वप्नका भी जगत् नहीं होता है और यह जगतभी नहीं होता है और जगजानेपर भी स्वप्नके जगत् का पता नहीं होता है, इसप्रकार एक समय के जगत् का दूसरे समय में जब अभाव होता है तब फिर जगत्की सत्यता कहाँ रही ?, अज्ञानवश रस्सी में सर्प की प्रतीति की समान ब्रह्मके स्वरूप पर इस जगत् का भान हो रहा है, इस प्रकार जगत् धोखे टट्टी के सिवाय और कुछ नहीं है।

सरस्वती—(मनमें) यहतो शास्त्रार्थ में मुझे चुपही करदेंगे जिसने मेरे पतिको, जीत लिया वह मेरे जीतने में भला काहे को आनेलगा है ? आखिर तो मैं अबलाही हूँ; अच्छा अब कुछ कपट करके इनके छक्के छुटाऊँ (प्रकट) अच्छा संन्यासी जी ! तुम्हारे अद्वैतशास्त्र में जिन छः रिपुओं को जीतना कहाहै, वह कौन से हैं, उनके नामतो बताओ ?

शंकराचार्य—(हँसकर) सरस्वती ! यह तू ने क्या प्रश्न किया ! अच्छा सुन— १ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मत्सर, इन छः को अपने वश में करना चाहिये, तिस में कामको बड़ाही कठिन है, परन्तु योगी के सामने उस कामदेवकी भी कुछ नहीं चलती है।

सरस्वती—अजी संन्यासी जी ! सुनो तो सही—

पृच्छामि वद कामस्य कलाभिक्षो किमात्मिका।
कियन्त्यश्च किमाधारास्तथा कामस्य का स्थितिः॥
पूर्वपक्षे परे नार्यां नरे तिष्ठति वा कथम्।
एतेषामुत्तरं देहि सम्बिचार्य यतीश्वर॥

उस कामकी कलाओं का क्या स्वरूप है ?, और वह कितनी हैं ? तथा किस आधार से रहती हैं ? मनुष्य में काम की स्थिति किसप्रकार होती है ?, शुक्लपक्ष और कृष्ण पक्ष में, मनुष्य और स्त्री के विषें, वह कामकी कला कहाँ२

कैसे २ रहती है ? इन मेरे प्रश्नोंके उत्तर ठीक२ विचार करदो।

शङ्कराचार्य–(विचार में पड़कर मौन रहजाते हैं)

सरस्वती–क्यों महाराज ! चुप क्यों साधली ? क्या मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देसकते ? तब तो तुमको हार माननी पड़ेगी ! इतने से प्रश्न का उत्तर नहीं देसकते ? फिर तुम सर्वज्ञ कैसे हो ?

शंकराचार्य–सरस्वती ! इस प्रश्न का उत्तर मैं तुझको एक महीने के भीतर दूँगा, तबतक की मुझको अवधि दो ॥

सरस्वती–बहुत अच्छा ! यदि एक महीने के भीतर उत्तर नहीं दोगे तो हारे समझे जाओगे, एक महीने के लिये तो मैंने अपने पति को संन्यासरूप अकालमृत्यु के मुख से बचाही लिया (पति से) महाराज ! घरको चलिये ।

(तदनन्तर मण्डनमिश्र सरस्वती और सब पण्डित जाते हैं)

पद्मपाद–(शंकराचार्यजी से) महाराज ! आपने यह क्या किया क्या कहाजाय ? आपने तो हाथ में आये हुए मण्डनमिश्र को खोदिया !

शंकराचार्य–अरे भाई ! सरस्वती ने तो प्रश्न ही ऐसा बेढब किया कि–मैं जिसका उत्तर ही नहीं देसका ।

पद्मपाद–गुरुजी ! आप कौनसी बातको नहीं जानते है ? कामशास्त्र की ही बात थी तो क्या था ? आप सर्वेश्वर हैं, उत्तर देही देते तो उस में कौन हानि थी ।

शंकराचार्य–भाई ! उसका उत्तर देना ठीकही नहीं था, क्योंकि–यदि मैं उस प्रश्नका उत्तर देता तो वह यह कहती कि–तुम ब्रह्मचर्य आश्रम से एकसाथ संन्यासी होगये थे, फिर कामशास्त्र कब सीखा ? इस लिये तुम भ्रष्टहो।

पद्मपाद–अच्छा ! आपने जो एक महीने की अवधिकी है, उस में अब क्या करोगे ।

शंकराचार्य—बात यह है कि--इससमय अमरक नामक राजा का मरण हुआ है और उसकी लाश दाह करने के लिये श्मशान में लाई गई है, यह बात मैंने अभी योगदृष्टि से देखी है, सो मैं योगबल से उसके मृत शरीर में घुस कर उसके शरीर से उसकी सैंकड़ों स्त्रियोंसे विलास करताहुआ सब कामशास्त्र को जानलूंगा और कए मास के अनन्तर इस ही अपने शरीर में आजाऊँगा, तुम इतनाकाम करना कि--इस गुफा में बैठे हुए बड़ी सावधानी के साथ इस मेरी शरीर की रक्षा करते रहना ॥

पद्मपाद--महाराज ? ऐसा न करिये, इससे बड़ा अनर्थ होजायगा, मण्डन मिश्र मिलो या न मिलो, इसकी कुछ चिन्ता नहीं है, क्योंकि—हमने सुना है कि--पहिले समय में एक योगी थे वहभी इसीप्रकार राजा के शरीर में प्रवेश करके स्त्री लम्पटहो अपने स्वरूप को भूलगए थे, तब उनका एक योगी शिष्य लौटाकर लाया, सो हमसे आपके वियोग का संकट नहीं सहा जायगा ॥

शंकराचार्य--अरे भइया ! यह तुम्हारा क्या ध्यान है ? क्या मैं विषयों में फँसकर अपने कर्त्तव्य को भूलजाऊँगा मुझ में ऐसा अज्ञान होनेका तुम कुछ सन्देह न करो, सावधानी के साथ धैर्य से मेरे इस शरीर की रक्षा करते रहो, मैं बहुत ही शीघ्र लौटकर आऊँगा, अब जाने को देर होती है, क्यों कि--उस राजा का शरीर अब चिता पर रक्खाही जानेवाला है (इतना कहकर प्राणायाम के द्वारा शरीर को छोड़ते हैं, इसीसमय शरीर शिथिल हो भूमिपर लम्बा २ पड़ता है, और सब शिष्य नारायण नारायण करते हुए उस शरीर को उठाकर लेजाते हैं) ॥

इति मण्डन विजय परकाया प्रवेश नामक तृतीय अंक समाप्त ॥

———o———

अथ चतुर्थ अङ्क
प्रथमदृश्य

(अमरक राजाकी नगरी में का राजदरबार)

(तदनन्तर अमरक राजाका सुविचार नामवाला मंत्री और विचक्षण नामक न्यायाधीश आते हैं)

सुविचार-(आसनपर बैठकर) आइये न्यायाधीशजी! आपसे कुछ गुप्तबातें करनी हैं, इसीकारण बुलवाया था।

विचक्षण-मंत्रीजी! मैंभी आपका सिपाही पहुँचतेही हाथका काम जैसाका तैसा छोड़कर चलाआरहा हूं, जो कुछ विचार करनाहो करिये, यहां कोई तीसरा तो हैही नहीं।

सुविचार-कौनहै रे उधर! (इतना सुनतेही द्वारपाल आताहै)

द्वारपाल-(प्रणाम करके) महाराज मैं सेवक हाजिरहूं क्या आज्ञा है?

सुविचार-द्वारपाल! खूब सावधानीके साथ पहरा देना, हमारी आज्ञा लियेबिना किसी को भीतर न आने देना।

द्वारपाल-बहुत अच्छा महाराज! जो आज्ञा।

(ऐसा कहकर फिर प्रणाम करता हुआ बाहर को जाता है)

सुविचार-न्यायाधीश जी!, महाराज का दुसराकर जीवित होना तो आपने सुना ही है?

विचक्षण-सुनना क्या, वह सब बात मेरी आँखों की देखी हुई है! ऐसा चमत्कार मैंने तो अपनी उमर भर में कभी देखा नहीं, भला उनमें क्या कुछ बाकी रहा था? बड़े २ राजवैद्यों ने हाथ सकोड़ लिया था, तब ही तो प्राणहीन समझकर स्मशान का लेगये थे! परन्तु जैसे कोई सोकर उठ

बैठता है उसी प्रकार महाराज एकायकी उठ बैठे, और यह भी तो देखो—जिस रोग से महाराज को यहाँ तक कष्ट हुआ था वह रोग भी अब नहीं रहा, न जाने क्या भेद है, हमारी तो समझ ही काम नहीं देती, ऐसी अघटित घटना परमेश्वर की इच्छा से ही हुई है, इस राजधानी का यह प्रारब्ध ही समझना चाहिये ।

सुविचार—इस विषय में मुझे जरासा सन्देह है, क्योंकि—महाराज की व्याधि भी जीवित होने के साथ ही दूर होगई इतना ही नहीं किन्तु महाराज का स्वभाव भी पलट गया है, इससे मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि—हमारे महाराज तो इस संसार से गये सो गये ही, यह कोई और ही इस शरीर में आगया है ।

विचक्षण— तुम जाने क्या कहरहे हो, यह बात मेरी समझ में आई नहीं, तुमने क्या समझा है सो साफ साफ कहो ?

सुविचार—देखो हमारे महाराज तो हस्ताक्षर करने के सिवाय और एक अक्षर भी नहीं लिखसकते थे और अब तो यह न्याय का सब कारोबार अपने आपही लिख डालते हैं, कार्य में कितनी चतुराई है ! सब बातों पर कितना ध्यान है ! कौन अधिकारी कैसा कार्य करता है,सो बराबर देखते हैं प्रजाके ऊपर कितनी सूक्ष्म दृष्टि है, कहाँ तक कहूं, इन में जितने गुण हैं,हमारे महाराज में तो इन गुणों का पता भी नहीं था,न जाने एक साथ कहाँ से आगये ?

विचक्षण—भाई ! यह शंका तो कुछ नहीं है ! क्योंकि—जब परमेश्वर की देन हो तो किस बात की कमी रहसकती है ? जिसने दुबाराकर जीवन दान दिया वह अलौकिक गुण भी दे सकता है ।

सुविचार-छिः छिः ऐसा कहना तुम्हारे विचक्षण नाम को बट्टा लगाता है, भाई! इसमें कुछ और ही भेद है।

विचक्षण-अच्छा, क्या भेद है? बताओ तो सही इस विषय में बुद्धि काम नहीं देती, एकबार यह सन्देह तो मुझ को भी हुआ था कि-जिस मुकद्दमे का फैसला मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार न्यायानुकूल करदिया था, उसकी अपील जब महाराज के यहाँ हुई तब उन्होंने उसकी खूब ही छान बीन की और अन्त में फैसला भी बड़ी ही योग्यता के साथ किया, उसको देखकर मैं तो चकित होगया, और महाराज की पहिले समय की योग्यता से तुलना कीतो पृथ्वी आकाश कासा अन्तर प्रतीत हुआ, उस समय भी मैंने परमेश्वर की देन समझकर ही सन्तोष करलिया था।

सुविचार-मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि-किसी योगी ने राजयोग करने के लिये अपने शरीर को कहीं रखकर इस राजशरीर में प्रवेश किया है, क्यों तुम्हारे ध्यान में भी कुछ आता है?

विचक्षण-इसका निश्चय कैसे हो? और योगी पुरुष तो निरीह रहते हैं उनको इस खटखटे में क्या सुख मिलसकता है?

सुविचार-मैं यह बात केवल अपनी बुद्धि से ही कहता हूँ, और यह बात एक दिन मैंने राजपुरोहित से भी कही थी तब उन्होंने बहुत कुछ सोच विचार कर उत्तर दिया कि-यह कोई महायोगी है और ऐसा आजतक अनेकों स्थान पर हुआ भी है, क्योंकि-योगी पुरुष राजयोग साधने को ऐसा किया करते हैं।

विचक्षण-तब तो परमेश्वर की कृपा से यदि यही सदा हमारे राजा रहें तो अच्छा हो!

सुविचार--मेरी भी ऐसी ही इच्छा है और इसके लिये मैंने कुछ प्रबन्ध भी करना प्रारम्भ करदिया है।

विचक्षण--यही योगी बहुत दिनोंतक इस राजशरीर में रहें, इस विषय में कोई युक्ति तुमने गुरुजी से भी पूछी थी?

सुविचार- हाँ! पूछा था, उन्होंने भी मुझे युक्ति बताई और वह ठीक भी मालूम हुई।

विचक्षण--मुझे भी तो बताओ, उन्होंने क्या सम्मति दी?

सुविचार - उन्होंने कहा कि--बहुत से राजदूत सारी पृथ्वी पर ढूंढने को भेजो, उनको जहाँ कहीं कोई मृतक शरीर मिले उसको अग्नि में भस्म करवादें, ऐसा करने से सहज में ही उस योगी का शरीर नष्ट होजायगा तब वह आपही इस राज शरीर में चिरकाल तक रहेंगे।

विचक्षण--वाह! वाह! यह युक्ति तो बहुत अच्छी है! फिर इसमें देरी क्या है? किन्हीं विश्वासपात्र सेवकों को शीघ्रही इसकामके लिये भेजदेना चाहिये।

सुविचार--भेजता हूँ, परन्तु पहिले रानी साहब के महल में जाकर भी कुछ सुराख लगा देखूं, उनको भी इस विषय में कुछ सन्देह हुआ है या नहीं, वहाँ की टोह लेकर फिर सब प्रबन्ध करूंगा।

विचक्षण--अच्छा तो सब वृत्तान्त तो आपने सुन ही लिया अब मैं जाता हूं।

सुविचार--अच्छा तो चलिये, मैं भी अब उधर को जाता हूँ।

[ऐसा कहकर दोनों जाते हैं]

द्वितीय दृश्य।

(राजाका आनन्दकुंज बाग)

(वसन्ती और माधवी नामक राजमहल की दो दासियों का प्रवेश)

माधवी--सखि वसन्ती! जैसे तरुणाई में भरीहुई मतवाली

हथिनी आ आसपासके वृक्षोंका कुछ ध्यान न करके उन्मत्त हुई फिरती है, तैसेही तू यहाँ खड़ीहुई मेरी ओरको न देखकर अपनी छातीपर सुवर्ण के कलशों की समान दोनो स्तनोंको निहारती किसकी ओरको जारही है ?

वसन्ती–अरे ! मेरी प्यारी सखी वसन्ती है क्या ? सखी! तू जानतीही है जब कहीं मन जा पड़ता है तो फिर समीप में कोई भी पदार्थ हो वह नहीं दीखता, इसकी. मुझको क्षमा दे (ऐसा कहकर उसका हाथ पकड़ती है)

माधवी–सखि वसन्ती ! जिसने तेरे मनकोभी चिचलित करदिया है, ऐसा भाग्यवान पुरुष इस नगरी में कौन उत्पन्न होगया है ?

वसन्ती–(लज्जित होकर) सखि ! तू जैसा समझरही है, क्या अब मेरी अवस्था इस योग्य है ? न जाने तू ऐसी बातें क्यों कररही है ?

माधवी–ऐसी तो बूढ़ीभी नहीं होगई है ! फिर जिस मन्दिर में निरन्तर शृंगाररूप मेघकी वर्षा होती रहती है और जिस मन्दिर में कामदेवकी समान सुन्दर महाराजाधिराजकी दर्शनीयमूर्ति,पूर्ण खिलेहुए कमलपर भौंरेकी समान,जिनपरमोहित रहती है, उन महारानी मदनमञ्जरी के मन्दिर में तू रहती है,फिर मैं कैसे समझलूँ कि–तेरा चित्त ठिकाने रहताह होगा? अच्छा ! यदि ऐसा नहीं है तो यह हाव भाव कटाक्ष आदि से शरीर की सजावट काहे के लिये होती है ?

वसन्ती–ऐं: भाड़में जाओ, मुझसेतो ऐसी बातें ना आतीं! तेरे जीमें आवे सो समझ, अब यह तो बता तू कहाँ जारही है ?

माधवी–बतातो दूँगी, परन्तु तू इसबातकी प्रतिज्ञाकर कि–किसी से कहूँगी नहीं !

वसन्ती–मैं जानूँ अभी तू मेरे स्वभाव को नहीं पहिचानती है?, अरी! यद्यपि मैं और तू दोनों सौतियाडाह रखने वाली दो रानियों की दासी हैं तथापि तेरे साथ मैं जैसा व्यवहार रखती हूँ क्या उसको तू नहीं जानती है ?

माधवी–सखी इसीकारण तो कहती हूँ, सुन–कल रात महाराजसे हमारी रानी साहब रूठ गई थीं, उससमय जैसे तैसे ' अब मैं कभी मदनमंजरीका मुखभी नहीं देखूँगा, ' यह प्रतिज्ञा होनेपर महाराजकी उनके साथ एकशय्या हुई थी, परन्तु आज फिर महारानीसाहब को समाचार मिला है कि–इससमय महाराज आनन्दकुञ्जबाग में के जलमन्दिर में, महारानी मदनमञ्जरी के साथ हैं, 'यह बात ठीक है या नहीं ?' इसका पता लगाने को महारानीसाहब की भेजी हुई मैं गुप्तरूपसे आई हूँ, समझगई ?

वसन्ती–सखि ! जैसे कुम्हलाकर सूखीहुई कमलनीपर भौंरा बैठता है तैसेही महाराज न जाने उस बूढ़ीस्त्री के प्रेम में कैसे फँसगये ? मुझे तो बड़ा आश्चर्य है ?

माधवी–सखि ! पित्तकी प्रबलता के बिना भला कुटकी का सेवन कौन करेगा ? ऐसी गाँठ पड़जाने का कोई और ही कारण है !

वसन्ती–वह कौनसा कारण है, बताओ तो सही !

माधवी–कल महारानीसाहब ने एक व्रतका उद्यापन किया था, उसकी साङ्गता करनेके लिये महाराज जा फँसे थे, सो भोजनभी तहाँ ही हुआ था, फिर भला निकलकर कहाँ जासकते थे, इसकारण विवश होकर तहाँ ही रहना पड़ा।

वसन्ती–बहुतसी स्त्रियों से प्रेम रखना पुरुष को बड़ा ही-कष्ट देता है, देख अब तू तहाँ जाकर यह कहेगी कि-

महाराज हमारी महारानी के साथ इस बाग में हैं तो वह बुढ़िया महाराज को नोच नोचकर खायगी।

माधवी--(हँसकर) तेरे इस कहने से तो निश्चय होगया कि-महाराज यहाँ ही हैं ! मेरा कामतो सिद्ध होगया, अब मैं जाती हूँ !

वसन्ती-- सखि !बातों में मुझको कुछभी ध्यान नहीं रहा और गुप्त बात मुखसे निकलगई, अब कृपा करके किसीको मेरा नाम न बताना, नहीं तो मैं सदाको दो कौड़ी की होजाऊँगी।

माधवी--नहीं ऐसा कभी नहीं होगा,अच्छा यहतो बता कि--तू घबड़ाई हुई जा कहां रही है ? और महाराज जब तुम्हारी महारानीसाहिबाके साथ मिले तब क्या२ आनन्द हुआ ?

वसन्ती-कल रातको जब आधीरात तक महाराज नहीं पहुंचे तब महारानी बहुत ही बिगड़ीं, और सब दासियों को यह भेद जाननेके लिये कि-महाराज कहां हैं भेजा, उस समय हमने बहुत खोजकी परन्तु कुछ पता नहींलगा अन्तको महाराज बडी महारानीसाहबके भवनमें पधारे हैं, ऐसा पता लगाकर खबर देतेही हमारी महारानी ठुकराई हुई नागिनीकी समान ऊंची२ साँसे लेकर पलँगपरसे नीचे पड़रहीं और सब गहने उतार कर फेंकदिये।

माधवी-रानीसाहबको जैसा क्रोध आया होगाउसका मैं अनुमान करसकतीहूँ,क्योंकि-सब राजरानियों में एक वही तो अपनी सुन्दरता से सत्यभामा कोभी लज्जित करनेवालीहैं अच्छाफिर क्या हुआ ?

वसन्ती-फिर हम सबजनी घबड़ाकर महारानी के पासगई

परन्तु उन्होंने किसीकी एक न सुनी और कहने लगीं कि मैंतो अब प्राण खोदूंगी और महाराजको अपना मुख नहीं दिखाऊँगी, उससमय मैंने अनेको उतार चढावकीवातें समझाई तब कुछ२ शान्ति हुई, परन्तु नेत्रोंमें की अश्रुधारा तबभी बंद नहीं हुई, इतने ही में प्रातःकाल होगया. तब जैसे तैसे हमने पलँगपर लिटाया, इतने ही में सरकार भी जागनेसे औंघाते हुए से आकर पलँगपर बैठगये ।

माधवी–महाराज विचारोंको कहीं भी सुख नहीं, क्योंकि कलरातभर तहां भी ऐसेही दुर्दशा रहीथी ।

वसन्ती–जब बडी महारानी ने बडी प्रीतिके साथ महाराज को रोका था तो फिर उनके यहां यही दशा क्यों हुई ?

माधवी–यह तो ठीक है परन्तु जब दोनो शय्यापर बैठे तब महाराज बहुत दिनोंतक आये नहीं थे इसकारण महारानी रूठकर मौन होगई ।

वसन्ती–सखि ! भला कबतक मौन रही होंगी ! बहुत समयके भूखे ब्राह्मणके आगे पंचपकान्न का थाल रखने पर भला वह कबतक धीरज धरे बैठा२ देखता रहेगा ? यही दशा क्या बडी महारानी की नहीं हुई होगी ?

माधवी–हमनेभी पहिले ऐसा ही समझा था परन्तु कलतो बहुतही खेंच हुई, ज्यों २ महाराज खुशामद करतेथे त्यों २ महारानी का मान बढ़ताजाता था, और जैसे नई विवाहिता स्त्री प्रथमवार समागम होतेसमय पतिके हाथ को,छूतेही झटक देती है, वस तैसीही दशा होने लगी तब हमको प्रतीत हुआ कि–महारानीसाहब की तरुणाई मानो फिरलौट आई है ।

वसन्ती–सखि ! ऐसा तमाशा कितने समयतक होतारहा

माधवी–सखि ! क्या कहूँ तू झूठ समझेगी प्रातःकालतक

यही झंझट रहा, महाराज ने अपनी सब बुद्धि खर्च करडाली परन्तु व्यर्थ होगई, तब महाराजने खिन्न होकर एक श्लोक पढा था वह इससमय मुझको याद नहीं रहा, परन्तु उसका भाव ध्यान में है, कहे तो सुनादूँ ?

वसन्ती–हां हां सुना—

माधवी–सखि ! प्रातःकाल के समय महाराजने खिन्न होकर जो श्लोक बोला था उसका भावार्थ यह है कि–"हे कृशोदरि ! रात्रि कृश होगई परन्तु तेरा मान कृश नहीं हुआ पूर्व की दिशा में राग (लाल रंग) आगया परन्तु तुझ में राग (प्रेम) उत्पन्न नहीं हुआ, यह आकाश प्रसन्न (साफ) होगया परन्तु तेरे मुखपर प्रसन्नता न आई, यह पक्षी बोलने लगे परन्तु तूने मौन नहीं छोड़ा, अब मैं क्या करूँ ? "

वसन्ती–हर हर, यहांतक नौबत आगई तबभी उस कठोर को दया नहीं आई !

माधवी–बस केवल मौन दूर होगया तबही—"मदनमंजरी का मुख अब कभी नहीं देखूंगी।" ऐसा वचनदो तो, ऐसा कहने लगीं।

वसन्ती–इसी का नाम सौतियाडाह है, अच्छा फिर ?

माधवी–तब महाराजने रानी से यही प्रतिज्ञा करके घडी भरको आराम कियाथा कि–प्रभातकाल के माङ्गलिक शब्द युक्त बन्दीजनों की स्तुतियोंने उनको महारानी के बाहुबन्धन से बाहर निकाललिया उसीसमय महाराज मुख धोकर इधर को आये हैं, यही अनुमान करके भेद मंगानेके निमित्त मुझ को इधर भेजा है, अब तेरी महारानी और महाराजका साक्षात्कार होनेपर क्या गुल खिला. सोतो सुना ?

वसन्ती–बातचीत तो कुछ हुई नहीं, महाराज आकर पलँग

पर बैठगये, यह देख महारानी उठीं और मेराहाथ पकड़करकहने लगीं कि—मेरा स्नान करनेका समय होगया, चल मुझे स्नानालय में लिवाचल, तथा और दासियों को आज्ञा दी कि-सरकार कल रातभर के थके और जगेहुए हैं, इनको पलँगपर निद्रालेने दो और तुमइनकी इच्छानुसार सेवामें लगीरहो, इतना कहने पर मैं महारानीको लेकर स्नानागारमें गई तहाँ नियमानुसार स्नान करके महारानी पीली साड़ी पहरेहुए देवमन्दिर में जाकर पूजा करनेलगीं और मुझको महाराज के समीप जाने की आज्ञादी सो मैं इधरहीको जारही हूँ ।

माधवी—अच्छातो अब मैंभी जाती हूँ (ऐसा कहकर चली गई)।

(इतनेही में सुविचार मंत्रीका प्रवेश)

सुविचार—(आगेको देखकर) यह तो, महारानी मदनमंजरी की दासी वसन्ती आरही है, इससे भेद निकालूँ (ऐसा कहकर वसन्तीसे) अरी वसन्ती ! जरा इधरतो आ, तुझसे बड़ा आवश्यक कार्य है ।

वसन्ती—(सामने को देखकर) क्या मंत्रीजीहैं! (ऐसाकह समीप जाकर) महाराज ! क्या आज्ञा है ?

सुविचार—वसन्ती ! मैं महारानी मदनमञ्जरी से एकान्त में कुछ सम्मति करना चाहताहूँ, इसका अवसर किसी प्रकार मिलसकता है क्या ? मैं जानता हूँ महारानी तुझसे बड़ी प्रीति रखती हैं, इसकारण यह काम जैसा तुझसे होगा वैसा दूसरेके हाथसे नहीं होसकेगा ।

वसन्ती—महाराज ! इसकाम के सिद्ध होनेका तो अभी अवसर है! इससमय महारानी साहब स्नानकरके देवमन्दिर में पूजाके निमित्त अकेली ही बैठी हैं, आइये चलिये, बस काम बनाही समझिये ।

सुविचार-अच्छा तो जा मेरे आने की खबर देकर भीतर प्रवेश होनेकी आज्ञा लेआ !

वसन्ती-बहुत अच्छा, मेरे साथ आइये [ऐसा कहकर दोनों जाते हैं !]

तृतीय दृश्य।

(महारानी का देवमन्दिर)

(तदनन्तर पुजारीके साथ पूजाकरती, आसनपर बैठी रानी मदनमंजरीका प्रवेश)

रानी- (पुजारीसे) महाराज!ठाकुरजी को मैंने स्नान करा-दिया, अब आप सब मूर्त्तियोंको पोंछकर सिंहासनपर पधराओ और सब के आभूषण पहरादो।

पुजारी-जो आज्ञा (ऐसाकहकर मूर्त्तियों को पोंछकर वस्त्र और गहने पहराता है,इतने ही में रातभर जागने के कारण रानीको औंघाई आती है और वह पीछेकी दीवारसे शिर लगा-कर सोजाती हैं,यह देख पुजारी भी विचारमें पड़ा खड़ारहता है,

(इतनेहीमें सुविचार मंत्री और वसन्ती दासी, यह दोनों आते हैं)

वसन्ती--मंत्रीजी ! इधरको आइये, (दोपग चलकर) यह देखो महारानी साहब बैठीहुई अनन्यभाव से भगवान् की पूजा कररही हैं। मैं जाकर आप के, आनेकी सूचना देती हूँ, तबतक आप यहाँ ही खड़े रहें।

सुविचार--ठीक है,तू जाकर महारानी साहब से मेरे विषय में आज्ञा लेकर आ।

वसन्ती--बहुतअच्छा (ऐसा कहकर) समीप जा उस दशा में स्थित हुई देखकर) महारानी साहब ध्यान में हैं या सोरही हैं ? (विचारकर) ठीक ठीक समझगई। कल-रातभर निद्रा न होने कारण इससमय आँख झपक गई है

(फिर इशारे से मंत्रीको पास बुलाती है और मंत्रीभी आता है)

सुविचार--क्यों वसन्ती ! महारानी साहबकी आज्ञा लेली क्या ?

वसन्ती--मंत्रीजी ! महारानीको इससमय जरा झपकीसी लगगई है सो क्षणभर खड़े होकर देखेंतो सही क्या चमत्कार होताहै [ऐसाकहकर दोनो देखते हुए खड़े रहते हैं]।

रानी-- [सोते में ही] प्राणवल्लभ ! सारी रात्रिभर मेरी वेत्रवती [दासी] की समान गलितस्तना स्त्रीपर मदनछत्र-होकर, कुपात्र में सत्पात्रपना मानकर, वात्स्यायनसूत्रवृत्ति [कामशास्त्र] का अभ्यास करनेके लिये शृंगार रूपी सत्र [यज्ञ] में दीक्षित हुए, परन्तु हेआर्यपुत्र ! वीतिहोत्र [अग्नि] से पतित शुष्कपत्रवन की समान इस अबला का गात्र भस्ममात्र होजायगा, यह विचारकर आपके चित्त में तिलमात्रभी दया क्यों नहीं आई ?

सुविचार-- [घबड़ाकर] क्यों वसन्ती ! इससमय यह महारानी साहब की बातें अट्ट सट्ट नहीं हैं क्या ?

वसन्ती--मंत्रीजी इसका बीज कुछ औरही है, वह विना-बताये आपके ध्यान में नहींआसकता,परन्तु यह तो सोते में की बर्राहट है।

सुविचार--वसन्ती ! इस ढँग से तो मुझे ऐसा अनुमान होताहै कि--शायद कल रात महाराज कहीं और रहे थे ?

वसन्ती--(मुखही मुखमें हँसकर) अच्छा आगेको क्या-होता है सो देखो !

मदनमंजरी-- (निद्रा में ही) प्राणनाथ ! इष्टजन को तुष्ट-करनेके लिये, मुझको कष्ट देकर उस नष्टमन्मथा को यथेष्ट आनन्द देने में आपने अपने अधर को केवल भ्रष्ट ही किया

और चण्डांशु सूर्य की प्रचण्ड किरणों के इस ब्रह्माण्डमण्डल पर ताण्डवनृत्य करने पर उस गर्वभरी स्त्री के शर्वदग्ध (कामदेव) को खर्व करने के लिये सर्व शर्वरी में निद्रा न पड़ने से निस्तेज हुए पर्वशशिसमान मुखको वस्त्रके आंचलसे ढककर मुझे सम झाने के लिये आये हो क्या? तो लो अब मैं आपसे बोलना ही छोड़ देतीहूँ ।

वसन्ती -(दयाकरके) अरे ! रातभर हृदय में घुटनेवाली बातें इससमय निद्राकी बेखबरी के कारण रानीसाहब के मुख से स्वयंही बाहरको निकलरही हैं ।

सुविचार- वसन्ती ! ध्यानदिया ? देखतो इन बातों में रानीसाहब की वाक्यरचना कितनी सुन्दर है ? निरन्तर सकल विद्यानिधि महाराज का साथ होने से, जैसे लोहा पारस का स्पर्श होने से सोना होजाता है तैसे ही होकर रानीसाहबकी वाणीमें मानों सरस्वती का वासाही होगया है, अच्छा देखो अब आगे को क्या हाल मालूम होता है ।

वसन्ती आज महाराज रानीसाहब के मन्दिर में सूर्योदय के समय आये थे, तबतक का हाल तो खुलगया, देखो आगे का क्या गुल खिले ?

रानी–(निद्रा में ही) वाः चूक होगई ऐसा समझकर चरण पकड़ने में भी लाज नहीं लगती, अच्छा तो ला मैं यहां बैठतीभी नहीं, मेरे स्नान का समय होगया, वसन्ती ! मुझे स्नान करने को देर होती है, स्नान के स्थान में ले चल, (ऐसा कह उठकर चलने लगती है, मंत्री घबड़ाकर दूरको हटता है और रानीभी जागकर लज्जित होती हुई फिर नीचे बैठती है) वसन्ती ! तू यहाँ कबआई ?

वसन्ती–सरकार ! आप के मुखसे स्वाभाविक ही सुन्दर

वाक्यरचना प्रकट होरही थी उसी समय आई हूँ।

रानी-वसन्ती! सौतिया डाहरूप आँधी का झोका,मेरे क्रोधरूप समुद्र को क्षुब्ध करता है अब मैं क्या करूँ? आज मुझ से पूजन पाठ भी तो नहीं बनसका।

वसन्ती-सरकार! तुम अपने कोमलचित्त को इस दुष्ट क्रोध के वश में न होने दो, नहीं तो बड़ा कष्टहोगा. चित्त सन्तोष और धैर्य रखने से परमसुख और कार्य की सिद्धि होती है।

रानी-(चौंककर) भला कैसे सन्तोष करूँ? महाराज ने मुझ से कपट करके उस भसल्लो को प्रसन्न करने में सारीरात त्रितादी, क्या यह थोड़ा अपराध किया है? अब परमेश्वर मुझे उनका मुखभी न दिखावे।

वसन्ती-रानीसाहब! यदि क्रोध न करो तो मुझे एक प्रार्थना करनी है।

रानी-अच्छा कहो, तेरा कथन तो मुझको अमृत से भी प्रिय लगता है।

वसन्ती-सरकार! मेघको सब देशके चातक एकसमान हैं,क्रम२से सबों के मनों को यदि वह शान्ति न देय तो उसको जीवानन्द कौन कहे?

रानी-(विचारकर)धन्य दासी धन्य! तेरी इस चतुरता को देखकर तुझको दासी कहते हुए भी मुझे लज्जा लगतीहै, सखि! मैंने वृथाही उन अपने प्राणप्यारे को दोष लगाया!

वसन्ती-परन्तु सरकार! यह आप के श्रेष्ठ मंत्रीआपसे कुछ प्रार्थना करने को आये हैं,यदि आज्ञा हो तो यहां बुलाऊँ

रानी-क्या सुविचार हैं? वाः मेरे मन में के दुर्विचार दूर होतेही क्या सुविचारआगये? वसन्ती! पहिले तो एक आसन लाकर यहां बिछादे, फिर उनको बुला ला।

वसन्ती-जो आज्ञा (इतना कह आसन लाई और बिछा कर मंत्रीको इशारेसे बुलाया, मंत्रीभी आकर प्रणाम करके आसन पर बैठगया)।

रानी-मंत्रीजी ! आप तो विना आवश्यक काम के इधर आते ही नहीं हैं और तिसपर भी आज आप कचहरी के समय में इधर आये हैं इससे प्रतीत होता है कि आज आप को कोई बड़ी आवश्यक सम्मति करनी है ? ।

सुविचार-महारानी साहब ! आप अपनी चतुरता के कारण ही, सब रणवास भर में चतुरशिरोमणि कहलाती हो अतएव मैं आप से कुछ सम्मति लेने को आया हूँ।

मदनमंजरी-फिर विलम्ब क्या है ? जो कुछ कहना हो कहिये।

सुविचार-सरकार ! वह बात बहुत ही गुप्त है,इस कारण सबके सामने निवेदन नहीं करसकता।

मदनमंजरी-(दासी और पुजारी से) तुम बाहर बैठो और किसी को भीतर न आने देना।

दासी और पुजारी-जो आज्ञा (ऐसा कहकर बाहर जाते हैं)

मदनमंजरी-क्यों मंत्री जी ! अब तो कुछ खटके की बात नहीं है ? कहिये क्या कहना है ?

सुविचार-महारानी साहब ! मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ वह पहले तो आपको नई बात मालूम होगी परन्तु पूरा २ विचार करने पर उसका तत्त्व समझ में आजायगा, परमेश्वर ने जो आपको परमचतुरता दी है इस समय उससे काम लीजिये।

मदनमंजरी-मंत्री जी ! कहिये तो सही, आपने कोई उत्तम ही विचार किया होगा।

सुविचार—अच्छा तो सुनिये सरकार! महाराज का फिर जीवित होना कैसे चमत्कार की बात हुई है ? और उनके स्वभाव में भी कितना लौटफेर होगया है! इत्यादि अद्भुत बातों का गुप्त रहस्य क्या है ? इस विषय में श्रीमती ने आजतक कुछ विचार किया है क्या ?

मदनमंजरी—(हंसकर) वाह मंत्री जी! तुम वास्तव में बड़े चतुर हो, क्या कहूँ—जब जब मैं अकेली बैठी होती हूँ तब तब मेरे मन में यही विचार फुरते हैं परन्तु तत्त्व कुछ समझ में नहीं आता, और तुम जो कुछ कहरहे हो, यह ठीक ही है, बात २ में पहिले स्वभाव और आजकल के वर्त्ताव को मिलाने पर पृथ्वी आकाश का सा अन्तर प्रतीत होता है, और दूसरा प्रमाण देने की क्या आवश्यकता है, आज कल महाराज ने जो एक ग्रन्थ बनाया है, बड़े २ पंडित उस की प्रशंसा करते हैं, उसी से पहिली और अबकी योग्यता का पूरा २ पता लगरहा है।

सुविचार—वास्तव में आपने अकाट्य प्रमाण दिया है, आज कल जो महाराज ने अमरक नाम वाला ग्रन्थ बनाया है उसमें सकल शृंगार शास्त्र और अलंकार शास्त्र को कूट २ कर भरदिया है, इस बात को आप की राजसभा के परम प्रसिद्ध विद्यामुकुट पंडितजी भी कहते हैं,और इस पुनर्वार जीजाने से पहिले महाराज से बात चीत करने में यदि कोई एक भी संस्कृत का शब्द आजाता था तो उसके अर्थ को कितनी ही देर तक विचारते रहते थे, सो इतना ज्ञान एक साथ कैसे होसकता है ?

मदनमंजरी—(सकुचाकर) ऐसी बातें मैं तुमको कहाँ तक सुनाऊं ? मुझे तो सब ही बातों में बड़ा भारी अचरज होता

है, और मेरी तो बुद्धि ही इस विषय में कुछ काम नहीं देती ! परन्तु तुमने इस में क्या तत्त्व समझा है वह भी तो सुनाओ ?

सुविचार--रानी साहब ! मैं निश्चय कहता हूँ कि--किसी योगी ने राजयोग साधने के लिये इस राजशरीर में प्रवेश किया है।

मदनमंजरी--(घबड़ाकर) मंत्री जी ! यदि यह सत्य है तब तो मुझको बड़ा भय होगया ! क्योंकि उस योगी ने हम को भ्रष्ट करदिया।

सुविचार--(हँसकर) छिः छिः आपको ऐसा सन्देह न करना चाहिये, संसार के सब नाते शरीर से हैं, जीव के सम्बन्ध से नहीं हैं, क्योंकि-यह विकार जीव में हो ही नहीं सकते, इस कारण जिस शरीर से आपके शरीर का स्त्री और पतिभाव रूप सम्बन्ध हुआ था, वही तो शरीर है, केवल जीव बदलगया, इस से आपको कुछ दोष नहीं लग सकता।

मदनमंजरी--यदि यही तत्त्व है तब तो चित्त को कुछ शान्ति होती है। परन्तु मंत्री जी ! यही महाराज चिरकाल तक इस शरीर में रहें, इसका कोई उपाय होसकता है क्या ?

सुविचार--महारानी साहब! इस बात का सब प्रबन्ध करके ही मैं आप की सम्मति लेने को आया हूँ, मैंने यह काम करना विचारा है कि--अभी जाकर सारी पृथ्वीपर दूतों को भेजूँगा, वह जहाँ जहाँ कोई मृतक शरीर पावेंगे उसको भस्मकर डालेंगे, तब अवश्यही कहीं न कहीं इन योगीराज का शरीर भी भस्म हो ही जायगा तब यह लाचार होकर चिरकालतक इस राजशरीरमें ही रहेंगे।

मदनमंजरी-यह तो बहुत अच्छी युक्ति है! अब आप जाकर इसकाम को शीघ्र ही करडालिये, और दूतोंको समझा दीजिये कि-वह बहुत ही ध्यान के साथ पृथ्वीभर के मृतक शरीरों को ढूँढ २ कर जलाडालें, समझगये न?

सुविचार-इस विषय में सरकार कुछ चिन्ता न करें, अच्छा तो अब मैं आज्ञा चाहता हूँ।

मदनमंजरी-जाइये प्रधानजी! आपके इस उपकार को मैं जन्मभर कभी नहीं भूलूँगी (परदे की ओर को देखकर) कौन है उधर!

वसन्ती (दौड़ती हुई आकर) रानी साहब क्या आज्ञा है?

मदनमंजरी-वसन्ती! यह मंत्रीजी जाते हैं, इनको हमारे रणवास के रखवाले सिपाहियों में से कोई न रोके, इसकारण तू इनके साथ जाकर पहुँचा आ।

वसन्ती-जो आज्ञा (ऐसा कहकर मंत्री से) चलिये सुविचारजी!

(ऐसा होनेपर सुविचार मंत्री नमस्कार करके दासी के साथ जाता है और फिर लौटकर वसन्ती दासी आती है)

मदनमंजरी-(दासीको आईहुई देखकर) अरी वसन्ती! कुछ समय पूजा में और कितना ही समय मंत्रीजी के साथ सम्मति करने में बीत गया परन्तु उधर से अवसर मिलते ही फिर मेरा चित्त महाराज के ही देखनेको चाहनेलगा, क्याकरूँ?

वसन्ती-महारानी साहब! आपने आज ही तो यह प्रण ठाना था कि-मैं अब महाराज से कभी नहीं मिलूँगी, क्या वह सब विचार पानीपर लिखे हुए अक्षरों की समान जरा-देर में ही विलागया!

मदनमंजरी-सखि! यदि मच्छी जलका त्याग करना

चाहे तो उसको प्राणत्यागने के लिये भी तयार होना चाहिये इसकारण कहती हूँ कि—जैसे हो तैसे अब तो उन शृंगार समुद्रके साथ इस चण्ड नदीका संगम होने से ही शान्ति होगी।

वसन्ती—सरकार! आप घबड़ावें नहीं, मैं अभी मंत्रीजीको पहुँचाने गई थी तो इस का पता लगाया था कि—इससमय महाराज कहाँ हैं; तब मालूम हुआ कि—अभी भोजन करने को बैठे हैं,इस से मैं निश्चित कहती हूँ कि—भोजन से निबटते ही वह ताम्बूल खाने को आपके ही रंगमहल में आवेंगे,इस कारण आप भी अब शीघ्र ही भोजन से निबटलें।

मदनमंजरी-परन्तु हमारे महल की रसोई तयार है क्या? इसका पता तो ला।

वसन्ती--मैं अब उधर को होकर ही आई थी,सब तयारी है आप चलिये।

मदनमंजरी--अच्छा तो चल (ऐसा कहकर दासी के साथ जाती है)।

चतुर्थ दृश्य।

(अमरक राजा के नगरके बाहर का स्थान)

पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटक आदि शंकराचार्यजी के शिष्य नारायण नारायण शब्दकी ध्वनि करते हुए प्रवेश करते हैं।

हस्तामलक—पद्मपादजी! गुरुमहाराज ने जो एक मासकी अवधि की थी वहतो पूरी होगई,परन्तु अभीतक आये नहीं इसकारण कुछ शिष्यों को यहां गुफा में श्रीमहाराज के शरीर की रक्षा के लिये छोड़कर, हम उनको खोजने के लिये कितने ही दिनोंसे फिर रहे हैं,परन्तु अभी तक कुछ भी पता नहीं लगा, भला अब क्या करें?

पद्मपाद–जिस समय गुरु महाराज ने यह कहा था कि–'मैं दूसरे शरीर में प्रवेश करने को जाता हूँ मुझे ध्यान होता है कि-उस समय उन्हो ने यह बातभी तो बताई थी कि-मैं अमुक के शरीर में जाऊँगा? परन्तु इस समय वह नाम मुझे स्मरण नहीं आता? इसी कारण इतना कष्ट उठाना पड़रहा है।

त्रोटक–भाई तुम कैसी बातें कररहे हो! कहीं अन्धकार में सूर्य छिप सकता है? उत्तम कस्तूरी को वस्त्र में बाँधकर रखने से क्या उसकी गन्ध छुपसकती है? इसी प्रकार सकल विद्याओं के समुद्र गुरुमहाराज चाहे जहाँ हों, अद्भुत शक्ति के कारण अवश्यही पहिचान में आजायँगे, इसलिये चिन्ता न करो, थोड़े ही समय में उनका पता लगाजाता है।

हस्तामलक– अब हम इस अमरक राजाकी नगरी के समीप आपहुँचे हैं,यहाँ भी तो गुप्तरूप से ढूँढलेना चाहिये।

पद्मपाद–यहां तो खूब सावधानी से खोजने के लिए मैंने चिदाभासजी को नगर के भीतर भेजही दिया है कुछ देर इस बगीचे में बैठकर उन के लौटने की बाट देखना चाहिये

इतनेही में नारायण नारायण करते। चिदाभासाचार्य प्रवेश करते हैं।

हस्तामलक–(उन को देखकर) चिदाभासजी तो वह आरहे हैं, देखें क्या कहते हैं॥

पद्मपाद–(चिदाभास से) कहो भाई ! काम बना या निराश ही लौटे।

चिदाभास–मित्रो! निराश का तो नाम भी नलो,जिन के लिए हम व्याकुल हुए फिरते हैं वह हमारे परम हितू जीवन प्राण यहाँ ही हैं॥

पद्मपाद–(बड़े उल्हास से) यह तुमने कैसे जाना? बताओ तो सही।

चिदाभास—मैं सब वृत्तांत कहता हूँ, सुनो तब ही तुमको शांति होगी, तुम्हारे कहने के अनुसार मैं वेष बदल कर नगरभर के सबही गृहस्थोंके घर घूमा, तब कहीं कहीं अमरक राजा के आश्चर्यभरे चरित्र मेरे कानों में पडे, परन्तु हमारे प्रयोजन की बात कहीं भी सुनने में नहीं आई,जहाँ देखा तहाँ--राजा के बोलने की प्रशंसा, उसी की चतुराई की चर्चा, उसी की शूरताकी वाहवाह, उसीकी पण्डिताई का चकरवा और उसी की उदारता की बातें सुनने में आईं, तब मैंने ताडा कि हमारे इष्टदेव हों न हों तो इसी राजाके शरीर में हैं।

पद्मपाद--अच्छा फिर।

चिदाभास--फिर मैं गुप्तवेश से उस राजा के रणवास में गया तहाँ,क्या कहूँ जो अद्भुत शोभा देखी उसका तो मुझ से वर्णन ही नहीं होसकता,उस राजाके रणवास में जो सैकडों रानियें हैं वह सबही रूपसे देवाङ्गनाओं को भी लज्जित करने वाली हैं, मैं उनमें से हरएकके महल में गया तो उससमय वह यही मनारही थीं कि महाराज कबआवेंगे और हमारे चित्त को संतुष्ट करेंगे तथा सबही अपनी २ दासियों को, महाराज को प्रसन्न करने वाले उपभोग के पदार्थों को तयार करने के निमित्त कहरही थीं, इन सब बातों को देखनेसे मुझे निश्चय होगया कि यह राजा जैसा सबका प्यारा है तैसा ही बडा भारी उपभोगी और कामशास्त्र में चतुरभी होगा, परन्तु मुझ को जैसा होना चाहिये तैसा आनन्द प्राप्त नहीं हुवा, क्योंकि--मेरे प्यासे कानों को जो नयनामृत मिलना चाहिये था वह मिला ही नहीं।

पद्मपाद--अच्छा फिर क्या किया ?

चिदाभास–तहाँ से फिर मैं नदी के तटपर चलागया, तहाँ कोई स्नान कररहे थे, कोई सङ्कल्प पढ़रहे थे, कोई आसन बिछाकर सन्ध्या आदि नित्यक्रिया कररहे थे, कितनी ही सौभाग्यवती स्त्रियें स्नान करके वस्त्र पहिन रहीं थीं, और कितनी ही शिरों पर जलके भरे कलश धरे आपस में अपने २ घरकी सुख दुःख की बातें कहती हुई चली जारही थीं, परन्तु मेरी इच्छा तहाँ भी पूरी होती न दीखी तब मैं उस घाट से ऊपर को चलदिया आगे जाकर मुझको पुरुषों की भीड़ कुछ २ कम प्रतीत हुई और तहाँ एक तरुणी स्त्री एक युवा पुरुष के साथ कुछ बातें कररही थी, यह देख मैं उन के समीप गया और उनकी बातें सुनने लगा ।

पद्मपाद–फिर क्या हुआ ?

चिदाभास–सुनो–वह दोनो बड़े डर२कर बातें कररहेथे और उनकी बातों से मुझको यह प्रतीत हुआ कि–यह कोई राजा के अपराधी हैं, मित्रो ! अब मैं तुमको बहुत देर सन्देहमें डाले रखना नहीं चाहता, मेरे कानरूपी चकोरों को उन दोनों की बातेंही चन्द्रमाकी समान आनन्ददायक हुईं ।

पद्मपाद–(उत्कंठा से) कहो, कहो, वहबातें शीघ्र सुनाओ?

चिदाभास–वह स्त्री बोली–भाड़में जाओ अब तुह्मारा अज्ञातवास (छुककर रहना) मैं इस वियोग के दुःखको कबतक सहती रहूँ ?, इसपर वहपुरुष कहने लगा कि–हे प्राणप्रिये ! वियोग का दुःख तुझे ही होता है, मुझे क्या नहीं होता है ? परन्तु क्या करूं, महाराज अमरक मुझसे अप्रसन्न होगये हैं, उनको नगरी में मेरे आने का समाचार मिलते ही वह मुझ को प्राणान्त दण्ड दियेविना कभीभी नहीं छोड़ेंगे इसकारण प्रिये!

जैसे आजतक के दिन विताये हैं तैसेही कुछ थोड़े से दिन और भी दुःख सहले।

पद्मपाद- (वीच मे ही) इस पर वह स्त्री क्या बोली ?

चिदाभास-हाँ हाँ जरा धीरज रक्खो,फिर वह स्त्री कहनेलगी कि-हे प्राणनाथ ! अव तुम राजा का भय कुछ न मानो, क्योंकि-वह राजा तो परलोक को सिधारगया आजकल जो राज्य कररहा है वह तो बड़ा साधु परमनीतिमान् और अत्यन्त दयालु कोई योगी है,इसपर उसपुरुष ने चकित-होकर बूझा कि-हे प्रिये ! तू जाने क्या कहरही है ? मेरी तो समझ में नहीं आया,क्योंकि थोड़े दिन हुए अभी जो राजा मेरे ऊपर क्रुद्ध हुआथा उसी को मैंने अव देखा है,न जाने तू उसका मरण होना कैसे कहरही है ?

पद्मपाद-इसपर उस स्त्री ने क्या उत्तर दिया,वह भी तो वताओ ?

चिदाभास-तव वह स्त्री कहने लगी कि-अभी तुम को भेद-नहीं मालूम है, मैं कहती हूँ सुनो-तुम्हारे ऊपर जिस का कोप-हुआ था वह राजा कुछदिन हुए रोगीहोकर मरगया,उसीसमय उसको स्मशान में दाह कर्म करने को लेगये थे,सो स्मशान में पहुँचतेही वह एकसाथ जी उठा तव तो सव को वड़ा भारी आश्चर्य हुआ ! वह दुसराकर जीवित हुआ राजा ही आजकल राज्य कररहा है,और इसके आज कलके गुणों से पहिले गुणों को मिलानेसे पृथ्वी आकाश का सा अन्तर दीखता है, कुछ सम्बन्ध ही नहीं वैठता,इस कारण यह कोई योगी,राजयोग साधने के लिये आया होगा,इस वात का राज्य के चतुर मंत्रियों ने और रणवास की सव रानियों ने निश्चय करलिया है,इस-कारण हे प्यारे ! अव तुम आनन्द के साथ घर को चलो,इस-

पर वह पुरुष बडा प्रसन्न होकर उसके साथ चलागया, क्यों मित्रो ! इस से सब तत्त्व तुह्मारी समझमें आगया या नहीं ? मैंतो पूरे निश्चय से कहता हूँ कि–हमारे गुरुमहाराज यहाँ ही हैं ।

(उससमय सब शिष्य नारायण शब्द की ध्वनि करते हैं)

पद्मपाद– मित्रो ! अब विलम्ब न करो, गुरुमहाराज को विषयोपभोग के कारण इस शरीर का स्मरण नहीं रहा है सो अब मैं गवैया बनकर उसराजा के पास जा गाना गाता हूँ उस गायन में ही इस तत्त्व का स्मरण दिलाऊँगा तब वह स्मरण होते ही उस राजशरीर को त्यागकर अपने इस पहिले शरीर में आजायँगे ।

हस्तामलक–उस समय आपको भी पूर्णरीति से सावधान रहना चाहिये, क्योंकि–वह स्मरण होतेही उस शरीर को त्यागेंदेंगे, तब मंत्री आदि कहीं सन्देह में पकड कर आपकी दुर्दशा न करडालें ?

पद्मपाद– छिः छिः इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो उनको स्मरण होते ही मैं योगबल से अन्तर्धान होकर यहाँ तुम्हारे पास ही आपहुँचूँगा, अब तुम सब इस गुफा में ही जाकर बैठो, केवल चिदाभासजी को ही मेरे साथ रहनेदो. क्योंकि–यह नगर का सब भेद जानते हैं, अच्छा तो अब तुम सब गुफामें को जाओ, मैं भी चिदाभासजी के साथ नगरीमें जाताहूँ

(तदन्तर सब नारायण नारायण करते हुए जाते हैं)

पञ्चमदृश्य

(मदनमंजरीका रंगमहल)

[बसन्ती दासीकेसाथ मदनमंजरीका प्रवेश]

मदनमंजरी–सखी बसन्ती ! मैंतो भोजनकरके इसमहलमें

आवैंगी, अब महाराज इधर को आवें तभी ठीक है, नहीं तो सब वृथा है,जाने महाराज अभी भोजन से निवटे होंगे या नहीं?

वसन्ती-सरकार भोजन करके अभी उठे हैं, निःसन्देह अब इधर को ही आवेंगे,परन्तु उनके आने पर अब तुम किस ढंग का वर्त्ताव करोगी ?

मदनमंजरी-हाँ ! ठीक प्रश्न किया, पहिले इस बातका निश्चय करलेना उचित है, सखि ! यद्यपि महाराज मुझको धोखा देकर कल रात सौत के घर गये थे, तथापि मेरे ऊपर उनका प्रेम कम नहीं हुआ है, यह बात मैं निश्चय कहसकती हूँ, इसकारण अब महाराज की सवारी आने पर उनसे कोप न करके उन को प्रसन्न करना ही उचित है !

वसन्ती-आप जो कुछ कहरही हैं, बहुत ठीक है, परन्तु ऐसा करने में कामदेव के नाटक का पूरा २ रंग नहीं जमेगा, आगे आपकी जैसी इच्छा हो सो करें।

मदनमंजरी-(हँसकर) वसन्ती ! मुझको तू चित्तके अनुकूल ही दासी मिली है, मैं तेराही कहना करूँगी, परन्तु ताम्बूल-अंगराग आदि सब उपभोग की सामग्री तो तयार है ना ?।

वसन्ती-महारानी साहब ! आपके विलासभवन में क्या किसी प्रकार की कमी रहसकती है ? आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें आज और दिन से अधिक सामान तयार कर रक्खा है ।

(इतनेहीं में परदे के भीतर शब्द होता है)

[॥ आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलम् ॥]
[॥ किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां जालकैः ॥]
[॥ तन्व्या यत्सुरतान्ततान्तनयनं वक्त्रं रतिव्यत्यये ॥]

[॥ त्वत्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ॥]

मदनमंजरी-सखी वसन्ती! तूने श्लोक सुना क्या? आहा! कैसी मधुर वाणी है! सखि! मंत्र जाननेवालों के मुखसे मंत्र का उच्चारण होतेही जैसे पिशाच का संचारहोता है तैसेही प्राणनाथ के कहेहुए श्लोक को सुनतेही मेरे शरीर में कामदेव का आवेश होकर शरीर पर की कंचुकी के सैंकड़ों टुकड़े होगये!

वसन्ती-महारानीजी! यह क्या? अभीतो दर्शन भी नहीं हुआ है तिसपर यह दशा! भला उस कामदेव की समान सुन्दर मूर्त्तिके नेत्रोंके सामने आने पर तुम मेरी सम्मति से क्या काम लेसकोगी? वह देखो महाराज समीप ही आगये, यह सरकार को मंदिर में पहुँचाकर सब सेवक भी पीछे को लौटगये, अब मैं कहूँ तैसा करिये, इस पलँगपर, हथेली पर गालको रखकर नीचे को देखती हुई चुप बैठजाओ, महाराज चाहे जितने उपाय करें ऊपर को मत देखियो और मैं भी तुम्हारे पीछे बुतसी सुस्त खड़ी रहूँगी। और जब मैं इशारा करूँ उसी समय सरकार का कहना मानलेना तो बड़ा आनन्द होगा।

मदनमंजरी-बहुत अच्छा, जैसा तूने कहा ऐसा ही करूँगी (ऐसा कहकर दासी के कहने के अनुसार बैठती है और दासी पीछे की ओर खड़ी होती है)

(इतने ही में अमरुक राजा आते हैं)

राजा-(उसी श्लोक को फिर पढ़कर) भगवन् कामदेव! सृष्टि-पालन-और प्रलय करनेवाले ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करसकते, फिर अन्य संसारी जीवोंका तो कहना ही क्या है? हे मकरध्वज! रति में मदमस्तहुई स्त्री के सकल शरीर में जब तुम्हारा निवास होता है

उस समय तिस कामिनी के मुख के माहात्म्य का क्या वर्णन करूँ। निर्लज्जता के साथ क्रीड़ा करने को तयार होने के कारण सब केश खुलकर बिखरजाते हैं, सब इच्छा पूरी होनेकी आशा से आनन्दपूर्वक गरदन को हिलाते में कानों में के मोती और गहने कपोलोंपर झूलने लगते हैं, पति के शरीरको दूधमें जल के मिलनेकी समान आलिङ्गन करनेके कारण आये हुए पसीने की बूँदों से ललाटपर का केसर का तिलक कुछ पुछसाजाता है, सुरतसुख का पूरा २ आनन्द पाने के लिये उधर ही को चित्त लवलीन होजाने पर विशालनेत्र कुछएक मुँदजाते हैं, ऐसे लक्षणोंवाला स्त्री का मुख, वह कार्य-करसकताहै कि–जिस कार्य को चाहे एकवार ब्रह्मा और शिव विष्णु भी न करसकें, इस कारण सुख चाहनेवाले पुरुषों को उस मुख की ही उपासना करना चाहिये।

मदनमंजरी–सखी वसन्ती! चन्द्रमा का उदय होने पर कुमुदिनी न खिले, इसके लिये कोई कितना ही यत्न करो वह व्यर्थ ही होगा, यही दशा मेरी होरही है, इस कारण जैसे चन्दन के वृक्ष को नई मालती की बेल लिपट जाती है तैसे ही मैं महाराज को कौलिया भर कर लिपट जाऊं क्या?

वसन्ती–सरकार! अभी थमिये, ऐसी अधीर होने से बना बनाया सब काम बिगड़ जायगा, ऐसे धीरपने का ढोंग बनाने पर अधीरता का लड़कपन शोभा नहीं देता है।

राजा–(दो पग बढ़कर रानी के सन्मुख हो) ओहो! यह कैसा चमत्कार है? (फिर अपने आप ही अटकल लगाकर) यह क्या सोलह कला पूर्ण शरद् ऋतु का चन्द्रमा है? अथवा आकाश गंगा में का अत्यन्त दमकता हुआ सुवर्ण का कमल है? अथवा स्वच्छ बिल्लौरकी थाली है? (विचार

कर) छिः छिः यह तो मेरी प्राणप्यारी का सुन्दर मुख होगा। अरे! यह दोनों क्या बड़े २ नील कमल हैं? अथवा स्वच्छन्द तैरने वाली दो मच्छियें हैं? या कामी कुरङ्ग को विह्वल करनेवाले कामदेव के बाण हैं? (विचाकर) नहीं नहीं यह तो मेरी हँसमुख प्यारी के नेत्र होंगे (जरा एक नीचे को देखकर) अरे! यह दो चकवे हैं क्या? या मालती के फूलों के गुच्छे हैं? अथवा सोने के कलश हैं? (विचार कर) यह मुझको कैसा सन्देह होरहा है? यह तो मेरी पिकबयनी के कुच होंगे (फिर उत्प्रेक्षा करके) अरे! यह क्या आँखों को चौंधाने वाली विज्जुछटा है? अथवा आकाश से गिराहुआ तारा है? या सुवर्ण की बेल है? (विचारकर) अरे रे! देखो मुझको बड़ा भारी धोखा हुआ, यह तो मेरी मृगनयनी मदनमंजरी है।

[ऐसा कहकर आलिंगन करने के लिये उसकी शय्या पर जाकर बैठते हैं उसी समय मदनमंजरी चट उठ कर दूर जाकर खड़ी होती है]

मदनमंजरी—(दासी की ओर को मुख करके) क्यों दासी! भूल तो बडे बडे पण्डितों की बातों में भी स्वाभाविक होती ही है, क्योंकि देख—महाराज ने सब वर्णन बहुत ही ठीक किया परन्तु अन्त में "पटरानी शृंगारचांद्रिका" इतना भूलकर अभागिनी मदनमंजरी का नाम कहगये, अरी! इस वर्णन के योग्य तो वह बुढ़िया ही है।

राजा—(मनमें) आज मेरे साथ यह उलटा व्यवहार और टेढ़ी २ बातें क्यों हैं? अच्छा समझगया, कल जो मैं भयंकर संकट में पड़गया था यह उसी का फल है। रहो, सब स्त्रियों में इसका मेरे ऊपर बड़ा प्रेम है, इस कारण यह कोप बहुत देर नहीं रह सकता, थोड़ीसी मनमें चुभती हुई बातें

करने ही से काम बन जायगा (प्रकाश रूप से) प्यारी चन्द्रवदनी मदनमंजरी ! कल रात मैंने तुझको निःसन्देह बड़ा ही दुःख दिया, परन्तु उस के लिये तुझ चतुरा को मेरे ऊपर दोष न लगाना चाहिये, क्योंकि-कल मुझ को तेरे आलिंगन के न मिलने में जो कारण हुआ था वह बसन्ती ने तुझको सुनाया ही होगा !

मदनमंजरी-(बसन्ती की ओर को देखकर) सखि ! अब तुझको ही उत्तर देना चाहिये ।

बसन्ती-सरकार ! कलकी दशा क्या कहूँ ? समय अच्छा था और मैंने अपने आपही जैसे तैसे तहाँ का समाचार लाकर सुना दिया था, इसपर महारानी साहब का क्रोध कुछ शान्त होगया, नहीं तो बड़ीही कठिनता पड़ती ।

राजा-(पलँगपर से उठ मदनमंजरी का हाथ पकड़कर) जो हुआ सो तो होही गया, फिर अब कोप क्यों है ? जब ठीक २ वृत्तान्त तुमको मालूम होगया तो मैं निर्दोष हूँ, इस बात का तुमको निश्चय होहीगया होगा, अब पलँगपर चलो, बहुत देरतक खड़ी रहकर इन कोमलचरणों को क्यों कष्ट दे रही हो ?

[इतना कह रानी को बलात्कार से लाकर पलँगपर अपने पास बैठाते हैं ।]

बसन्ती-अब मेरे नेत्र संतुष्ट हुए ।

मदनमंजरी-(कुपितसी होकर बसन्ती से) ऐसी बकबक मुझ को अच्छी नहीं लगती, जा द्वार बन्द करके बाहर बैठ ।

बसंती-जो आज्ञा, मेरा बोलनाही मुझे निकलवादेने में अच्छा कारण हुआ (ऐसा कहकर हँसती हुई बाहर को जाती है) ।

राजा-प्रिये ! इस समय तो बड़ी चतुराई से दासी को टालकर एकांत करालिया, इससे मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु अबभी मन में के सब कोप को दूर करके, शृंगारशास्त्र

में कहेहुए आठ प्रकार के आलिंगनों में से अपने को परम प्रिय लगनेवाला तिलतण्डुल नामक आलिंगन प्रसन्नचित्त होकर क्यों नहीं देती है ?

मदनमंजरी–जैसे तैसे अपना काम निकाललेना तो पुरुषों का स्वभावही होता है, इस बात को मैं भली प्रकार जानती हूँ और अधिक प्रेमका परिणाम भी दुःख ही होता है, कल रात इस बात का मुझ को पूरा२ अनुभव होगया है, इस कारण मैं प्रसन्नता से कहती हूँ कि–आप आज से आनन्द पूर्वक कल की समान वर्त्ताव करें, इस में मैं तिलभर भी बुरा नहीं मानूँगी।

राजा–प्यारी कोकिलकण्ठी ! पुरुष कितना ही विषयी हो परन्तु उस का सच्चा प्रेम सर्वत्र नहीं होता है और जिस एकाध स्थानपर होता है, तहाँ एकसाथ इसप्रकार का उलटा भाव दीखते ही उसके जीवनतक की कुछ आशा नहीं रहतीहै, सो हे विलासिनी ! इस अमरक के अन्तःकरण की अभी तूने पूरी परीक्षा नहीं की है, इस कारण ही तेरे मुख से ऐसे कठोर अक्षर निकल रहे हैं, प्रिये ! तुझ से सत्य कहता हूँ कि-यदि तू ने ऐसा वर्त्ताव करने का पक्का निश्चय कर लिया हो तो अब मेरे जीवन की आशा छोड देना।

मदनमंजरी–(अतिव्याकुल सी होकर) ऐसे निठुर बचन न उचारिये, जरा सत्य २ तो बताओ कल रात जो आपने मुझ को कष्ट दिया ऐसा मैंने क्या अपराध किया था।

राजा–प्रिये ! मैं सत्य २ कहता हूँ–स्त्रियों की पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, और हस्तिनी यह चार जातियें हैं उन में सब से श्रेष्ठ जो पद्मिनी जाति तिस जाति की तू है, इस बात का मैंने निश्चय कर लिया है और पद्मिनी जाति की स्त्री को रात में

कभी कामशान्ति की इच्छा होती ही नहीं है, क्योंकि--कमल केवल सूर्योदय से सूर्यास्तके समय तक ही खिला रहता है, इस कारण मैं रात्रि का समय वहां बिताकर तुझको प्रसन्न करने के लिये अब इधर को आया हूं, आया समझ में ?

मदनमंजरी-(गालोंही गालों में कुछ हँसकर)वाह ! यह तो आप ने समय की गढ़ी, यह ज्ञान आप को कलसे ही हुआ होगा। आप के अनुग्रह से कामशास्त्र का कुछ थोड़ा सा ज्ञान मुझ को भी होगया है, क्या इसका यथोचित उत्तर दूँ !

राजा--(सकुचाकर)दे दे, इन कानरूपी पिलासे चातकों को तेरे वचनरूप मेघ बड़े ही प्रिय लगते हैं,

मदनमंजरी--प्राणनाथ ! कमल को सूर्य का दर्शन चाहे जिस समय हो वह उसी समय खिल उठता है उस में रात और दिन क्या, तैसे ही मेरे लिये आप सूर्यरूप हैं इस कारण आप जिस २ समय इस दासी के समीप आवेंगे तब २ हा मेरा हृदयरूपी कमल खिले बिना कदापि नहीं रहेगा।

राजा--धन्य प्रिये धन्य ! वात्स्यायन ऋषि ने कामशास्त्र बनाया है परन्तु तेरी कल्पना उन से भी आगे बढ़ गई, इस कारण वास्तव में तेरा मदनमंजरी यह नाम योग्य ही है।

(ऐसा कहकर उस की ठोडी को हाथ लगाकर अपना मुख आगे को करते हैं)

मदनमंजरी--(राजा का हाथ एक ओर को करके) महाराज ! बलात्कार से अपना प्रयोजन साधने में क्या सुख मिलता है ? जरा धीरज रखिये।

राजा--प्रिये ! क्या कहूँ ! सुख तो इस में ही है, देख--।

[॥ सन्दष्टाधरपल्लवा सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती ॥]

[॥ मा मा मुंच शठेति कोपवचनैरानर्तितभ्रूलता ॥]

[॥ सीत्कारांश्चितलोचना सपुलका यैश्चुम्बिता मानिनी ॥]
[॥ प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः ॥]
प्रिये ! चुम्बन के समय अधरपल्लवको दबाने पर चकित होकर हाथ को झटकनेवाली, 'अरे ओ शठ मुझ को छोड छोड़' इसप्रकार कोपयुक्त वचनों को कहती हुई भौंएं टेढ़ी करने वाली, कुछ एक नेत्र मूँदकर सिसकी भरने वाली स्त्री को रोमांचित हुए जिन पुरुषों ने चुम्बन किया है, उनको ही सच्चा अमृत मिला है, विचारे देवताओं ने तो समुद्र मथकर केवल परिश्रम ही किया, उनको सच्चा अमृत नहीं मिला !

मदनमंजरी-प्राणनाथ ! ऐसे चातुरी के समुद्र पुरुष पर कौनसी नीच स्त्री अप्रसन्न रहेगी ? महाराज मैंने अब तक जो आपके साथ अनुचित वर्त्ताव किया इसको क्षमा करिये (ऐसा कहकर राजाको आलिंगन देती है)।

(इतने ही में परदे के भीतर से शब्द होता है कि-यदि महाराज महल में हों तो जाकर निवेदन कर कि सुविचार मंत्री मिलने के लिये आये हैं)

राजा-प्रिये ! प्रतीत होता है कि-परम चतुर सुविचार मंत्री यहाँ आने वाला है, इस लिये जरा सावधानी के साथ बैठ।

मदनमंजरी-(सिरका वस्त्र सम्हाल कर) ऊँः मंत्री को भी यही समय छँटा था! (ऐसा कहकर दूर को बैठती है)।

(तदनन्तर वसन्ती आती है)

वसन्ती-(राजा से) महाराज! मंत्रीजी आप से मिलने को आये हैं, यदि आज्ञा हो तो उनको यहाँ लिवा लाऊँ?।

राजा-जा शीघ्र ही लिवाकर ला।

वसन्ती-जो आज्ञा, (ऐसा कहकर परदे के भीतर जाती है और मंत्री को साथ लाकर उनसे कहती है) मंत्री जी इधरको आइये महाराज वह रानी साहब के साथ बैठे हैं!

मंत्री-(पास जाकर) महाराज और महारानी साहब का जयजयकार हो (इतना कह नमस्कार करके खड़े रहते हैं)

राजा-मंत्री! मेरे इधर चले आने से किसी राजकाज में गड़बड़ी पड़गई क्या?

मंत्री-सरकार! आपने ऐसा ढँग ही नहीं रक्खा जो राजकाज में गड़बड़ी पड़े, सब काम योग्य अधिकारियों को सौंपकर फिर भी उनके ऊपर आप सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं, इसी कारण दरबार में दुःख सुनाने के लिये किसी को नहीं आना पड़ता है। मैं इस समय यह निवेदन करने को आया हूं कि-किसी दूर देश से एक गवैया आया है और उसकी बातों से प्रतीत होता है कि-अपने काम में वह कमाल को पहुंचा हुआ है। ऐसे पुरुषों के आतेही श्रीमान को सूचना होनी चाहिये, आपकी यह कठोर आज्ञा है, इस कारण ही मैंने इस समय सरकार को कष्ट दिया है,इसको क्षमा करिये।

राजा-(प्रसन्न होकर) कौन, गवैया आया है? अच्छा उसको बड़े दिवानखाने में लेकर चलो और अपने यहाँ के सब गवैयों को भी आने की आज्ञा दो,मैं भी कुछ देर में तहाँ ही आता हूँ।

मंत्री-आज्ञानुसार सब तयारी करने को जाता हूँ (ऐसा कहकर प्रणाम करता हुआ जाता है।)

राजा-बसन्ती! रानियों के महलों में खबर करादो कि-आज बड़े दिवानखाने में उत्तम गवैयों का गाना होगा, इस लिये सब रानियें भी तहाँ पधारें, यह मेरी आज्ञा है!

बसन्ती-जो आज्ञा (ऐसा कहकर जाती है)।

राजा-प्रिये! तुमको गायन बड़ा प्रिय है, इसकारण ही इतना ठाठ किया है, कहो क्या मर्जी है?

मदनमंजरी–मेरी इच्छा कभी आपके विरुद्ध होसकती है? जो मैं अभी चलने को तयार हूँ।

राजा–चलो तो बड़े दिवानखाने में चलें (ऐसा कहकर दोनों चलने लगते हैं)

मदनमंजरी–(अपशकुन सा हुआ देख कर) चलने को तयार होने ही मेरी दाहिनी आँख फड़कने लगी, न जाने इस समय ऐसे अपशकुन क्यों होते हैं?

राजा–इस की कुछ चिन्ता न करो, तुम कल रात भर जगी हो इस कारण नेत्र में ऐसा विकार हो गया होगा, तथापि कुछ शान्ति करने के लिये उपाध्यायजी से कहला भेजेंगे, चलो।

(ऐसा कहकर दोनों जाते हैं)

छटा दृश्य।

(शंकराचार्य जी के शरीर वाली गुफा)

(तदनन्तर शंकराचार्यजी के शरीर को लेकर हस्तामलक आदि शिष्य नारायण नारायण करते आते हैं)

हस्तामलक–अजी त्रोटकाचार्यजी! हम पद्मपाद और चिदाभासजी को अमरक राजा की नगरी में छोड कर यहां आये थे, सो उन को कई दिन होगये, अभीतक उधर का कुछ समाचार ही नहीं मिला, इस कारण मुझ को बड़ी चिन्ता हो रही है।

त्रोटक–अब तुम अधिक चिन्ता न करो, चिदाभास ने नगरी में जाकर जो कुछ काम किया वह मैंने सुना है, प्रतीत होता है अब वह गुरु महाराज को लेकर ही यहां आवेंगे।

(इतने ही में परदे के भीतर नारायण शब्द की ध्वनि होती है)

हस्तामलक–(आनन्दित होकर) यह शब्द तो चिदाभासजी के सा प्रतीत होता है।

[तदनन्तर नारायण नारायण करते हुए चिदाभासजी प्रवेश करते हैं]

चिदाभास-(घबड़ाए हुए से) क्या अभीतक पद्मपाद यहाँ नहीं आये ?

त्रोटक-भाई ! तुम और वह तो एकसाथ ही थे, फिर अलग २ कैसे होगये ? हमको तो यह बड़ी भारी चिन्ता होगई, भला बताओ तो सही हमसे विदा होकर तुम दोनो ने क्या क्या किया ?

चिदाभास-सुनो भाई-जब तुम इधर को चले आये तो मैं और पद्मपाद दोनो गवैये बनकर उस राजा के मंत्री से जाकर मिले, पद्मपाद गुरु गवैये बने और मैं उनका शिष्य बनगया था, मंत्री से भेट होनेपर मैंने अपने गुरु गवैये की खूब प्रशंसा की और बातों में यह बात दिखाई कि- हमारे गुरुजी को धनकी कुछ इच्छा नहीं है, हाँ यह गाना उसीके सामने गाते हैं कि-जो इनके गुणको भली प्रकार समझ सके, हम यहाँ के राजा को बड़ा गुणग्राहक और गायन के मर्म को समझने वाला सुनकर आये हैं, इसकारण हमारे आने का समाचार महाराजके पास पहुँचा दीजिये ।

हस्तामलक-अच्छा फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-फिर वह परमचतुर मंत्री हमारा पूर्ण सन्मान करके और हमको एक उत्तम स्थानमें ठहराकर हमारे आराम के लिये एक सेवक को छोड़गया और महाराज को खबर पहुँचाने के लिये आपही चलागया ।

हस्तामलक-अच्छा फिर ?

चिदाभास-उस सेवक ने हमारे भोजन आदि का उत्तम प्रबन्ध करादिया, फिर मैं और मेरे गवैये गुरु भोजन करने को बैठे, इतने ही में मंत्रीभी झपटा हुआ आया और कह-

ने लगा महाराज अब ही तुम्हारा गाना सुनना चाहते हैं सो मेरे साथ चलिये, उसी समय हम तयार होगये और मैंने कंधे पर वीणा रखली तथा मंत्री के साथ उस राजा के रणवास में को होकर बड़े दिवानखाने में जा पहुँचे और बैठकर अपना साज सम्हालने लगे।

हस्तामलक (बड़े उत्कंठित होकर) फिर क्या हुआ?

चिदाभास-मित्रो! उस स्थान की शोभा को देखकर मेरे तो नेत्र चौंधागये, वह सारा महल सोने का था और उस पर भी हीरा-पन्ना मोती आदि नौरत्नों के जड़ाव का वारीक काम होरहा था, उस अटपैल बने हुए दिवानखाने में रत्नजड़ी सैंकड़ों सोने की कुरसियें घेरा देकर बिछाई हुई थीं और उनके बीच में सबसे ऊँचा एक राजसिंहासन लगाहुआ था, मंत्री ने हमको उसी के सामने जाकर बैठाला था कि इतने ही में और भी सैकड़ों गवैये आगये, उनमें से कोई सारंगी, कोई सितार, कोई बीन और कोई जलतरंग, इस प्रकार अनेकों बाजे निकाल कर सब का एक स्वर मिलालिया और हमसे भी हमारी वीणा उनही बाजों के साथ मिलालेने को कहा।

हस्तामलक-अच्छा फिर क्या हुआ?

चिदाभास-तब मेरी तो पोल खुलने लगी, क्योंकि-वीणा को कन्धे पर धरलेने के सिवाय यहाँ तो और कुछ आता ही नहीं था और मैं यह भी समझरहा था कि-मेरे गुरू भी कुछ अधिक नहीं जानते हैं परन्तु मेरे गवैये. गुरू ने बड़ी गंभीरता के साथ मुझ से वीणा लेकर कुछ खुंटियें ऐंठीं और कुछ एक बन्धन ऊपर नीचे को सरकाये, बात यह है सरसरी रीति पर वीणा को मिलादिया, इतने ही में एक साथ

दीवानखाने के सामने का द्वार खुला।

हस्तामलक-(बड़ी उत्कंठा से) अच्छा तो फिर क्या हुआ?

चिदाभास-उस द्वार में को, रत्नजटित गहनों से लदी हुई और एकसी साड़िये पहिने हुए एक सहस्र तरुणी दासियें आकर, जो सौ आसन बिछरहे थे उन के चारों ओर खड़ी होगई।

हस्तामलक-फिर क्या हुआ?

चिदाभास-इसके अनन्तर, जैसे वसन्त ऋतुमें समस्त हथनियों के साथ गजराज आकर सरोवर में प्रवेश करता है तिसीप्रकार वह राजा अपनी सौ रानियों के साथ आया और सब से ऊंचे सिंहासन पर बैठ गया फिर वह सब रानियें भी चारों ओर जो सौ आसन लगे हुए थे उन पर क्रम से बैठ गईं, इतने ही में जो पैरों तक जरी का चोगा पहर रहा था और जिस के हाथ में सोने की छड़ी थी ऐसे बूढ़े चोबदार ने आकर हमारे गुरुजी से गान प्रारम्भ करने को कहा।

हस्तामलक-अच्छा फिर?

चिदाभास-उस समय मैं तो घबड़ागया, क्योंकि-मुझे यह निश्चय नहीं था कि मेरे गुरु गाने में चतुर हैं, और मैं तो यह भाँपने लगा कि यहाँ से भागते समय किस द्वार से सुभीता रहेगा, परन्तु पद्मपादजी ने जो वीणा लेकर गान का आरम्भ किया तो एक बड़ाही उत्तम पद गाया, भौंरे को लक्ष्य करके उस पद का यह अर्थ था कि तुम कौन हो? तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है? तुम जिन को आशा देकर इधरआये थे वह तुम्हारे वियोग से व्याकुल होकर प्राण देने को उद्यत होरहे हैं। पद्मपादजी का यह पद समाप्त होते ही राजा को

स्मरण आगया और उसी समय नेत्र घुमाकर उस बड़े भारी सिंहासन पर से वह राजा साहब नीचे गिर पडे।

हस्तामलक–(आनन्दित होकर) वाह ! वाह ! अच्छा फिर क्या हुआ ?

चिदाभास–उस समय सारे दिवानखाने में हाहाकार मचगया, सब रानियें राजा के प्राणहीन शरीर को लिपट २ कर विलाप करने लगीं–यह काम गवैये का है, देखते क्या हो, उस को पकड़ो, इतना शब्द कान में पडते ही, अब यहाँ रहे तो वडी वढ़िया विदायगी मिलेगी, इस भय से गवैये गुरु को इशारा करके मैं तो योगशक्ति से सूक्ष्मरूप धार अभी तुम्हारे पास आया हूँ, परन्तु अभी तक पद्मपादजी न जाने क्यों नहीं आये ?

हस्तामलक–(घवडाकर) कहीं पद्मपादजी उन लोगों के कोप देवता की भेट तो नहीं होगये ? हा ! अब गुरुजी अपने पूर्व शरीर में आवेंगे और जिस ने इतना साहस करके अपने को पूर्व का स्मरण कराया, वह विचारा अपने प्राणों से भी गया, ऐसा देखें सुनेंगे तो उन को वडा कष्ट होगा ! अब हम कैसी करें ?

चिदाभास–इतने न घवडाओ, प्रायः वह अब आतेही होंगे, जब उन के ऊपर गुरु महाराज की कृपा है तो किसकी शक्ति है जो उनका वाल वाँका भी कर सके?

इतने ही में परदे के भीतर वड़े जोर से नारायण शब्द की ध्वनिहोती है तब सब ही आनन्दित होकर नारायण शब्द की गुंजार करते हैं, इसके अनन्तर पद्मपादजी आते हैं।

पद्मपाद–मित्रों ! उधर का सब वृत्तान्त तो तुमने पद्मपादाचार्यजी से सुनही लिया होगा ?

हस्तामलक–हाँ हाँ! सुन लिया परन्तु आपके आनेमें जो विलम्ब हुआ, इस की हम को बड़ी चिन्ता होरही थी।

पद्मपाद–अब कोलाहल न करो, गुरु महाराज की सवारी अपने पूर्व शरीर में आने वाली है।

सब लोग श्री शङ्कराचार्यजी के शरीर की ओर को दृष्टि लगाते हैं, इतने ही में धीरे धीरे प्राणसञ्चार होकर श्रीशङ्कराचार्यजी उठकर बैठे होते हैं, उसी समय सब शिष्य नारायण नारायण शब्द की ध्वनि से गुफा को गुञ्जारते हैं।

शङ्कराचार्य–(बड़े आनन्द के साथ) शिष्यों! विषयों का मोह बड़ा कठिन है, जिसने मुझको भी भुलावे में डाल दिया, इसकारण तुम को बड़ा कष्ट हुआ होगा! अस्तु, अब देर न करो, मण्डनमिश्र हमारी बाट देख रहे होंगे, इस लिये उधर चलें और सरस्वती को उत्तर देकर मण्डनमिश्र को संन्यासी करें, बस काम बनजायगा, चलो तो सब! (ऐसा-कहकर नारायण नारायण कहतेहुए सबजाते हैं)।

सप्तम दृश्य

(माहिष्मती नगरी में मण्डनमिश्र का घर)

(तदनन्तर मण्डनमिश्र और सरस्वती का आगमन)

सरस्वती–(हाथ जोड़कर) महाराज! जिस दिन से आपको उस संन्यासी ने परास्त किया है उस दिन से आप मेरे साथ पहिले की समान चित्तसे बातें तक नहीं करते हो और न आपका मनही पहिले की समान भोगविलास में जमता है तथा अपने परमप्रिय कर्मकाण्डमें भी आपकी रुचि नहीं है, एकसाथ ऐसा क्यों होगया?

मण्डनमिश्र-(हँसकर) प्रिये ! जिसको सब तत्वोंका पता लगजाता है वह पुरुष सांसारिक मनुष्यों की दृष्टि में पागलसा दीखने लगता है, इस में आश्चर्य नहीं है। जिन दयालु गुरुने मुझ को ऐसा ज्ञान दिया है उनके लौटकर आने की अवधि टलगई इसकारण मेरा ध्यान उधरही पड़ा है।

सरस्वती-(डरती हुई) प्राणनाथ ! क्या आपने पहिले जो संन्यास लेने का निश्चय किया था वह अभी ज्यों का त्यों बना है ?

मण्डनमिश्र-इस में क्या सन्देह है ? प्रिये ! ऐसे सद्गुरु के मुख से निकले ज्ञानामृत को पीकर भी क्या मैं नाशवान् इन्द्रियों से झूठ कल्पना किये हुए संसार में के मिथ्यासुखों के लिये, लुभियाऊँगा ?

इतने ही में परदे के भीतर नारायण शब्द की ध्वनि होती है।

सरस्वती-(उचककर) अरेरे ! मेरे और मेरे पति के सम्बन्ध को तोड़नेवाला सत्यानाशी संन्यासी आगया !

(तदनन्तर सब शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्यजी आते हैं और सरस्वती सहित मण्डनमिश्र उनको प्रणाम करते हैं)

शङ्कराचार्य-(सरस्वती की ओर को मुख करके) सरस्वती ! अब तुझको कामशास्त्र में जो कुछ प्रश्न करने हों करले।

सरस्वती-(फिर प्रणाम करके) महाराज ! मैंने सब उत्तर पा लिये, भगवन् ! आप तो सब विद्याओं के समुद्र हैं, इस बातको मैं जानती थी, परन्तु स्त्रियों को पतिके लिये कैसा समझना चाहिये, इतना दिखाने के लिये ही मैंने वह विवाद किया था आप की विद्याकी परीक्षा करने को मैंने वह प्रश्न नहीं किया था। हे आचार्य ! यह मेरे पति आपके अधीन हैं, आप अब अपनी इच्छानुसार इनको

संन्यास दीजिये,मैं भी अब सत्यलोक को जाती हूँ, क्योंकि "मृत्युलोक में जन्म ले" ऐसा शाप होने के अनन्तर 'तेरे पति को शास्त्रार्थ में जीतकर जब कोई संन्यास देगा तब तू अपने पहिले रूपको पाकर इस पदपर आवेगी" इसप्रकार शाप का उद्धार भी होगया था, इसकारण हे जगद्गुरो ! अब मुझको जानेकी आज्ञादीजिये (ऐसा कहकर फिर प्रणाम करती है) ।

शङ्कराचार्य-(बडे आनन्द के साथ) सरस्वती ! मैं तुझको सत्यलोक में जानेके लिये आज्ञा नहीं देसकता, क्योंकि-मेरे मुख्य मठ ऋष्यशृंगपुर और द्वारका में होंगे. तहाँ तेरा पूर्ण निवास जबतक यह अद्वैतमत जगमें रहे तबतक होना-चाहिये और शिष्यपरम्परा से उन पीठोंपर जो जो बैठेंगे उनको पूर्ण विद्वान् बनाने के लिये तुझ को दृष्टि रखना चाहिये,

सरस्वती-महाराज ! आपकी आज्ञाको उल्लंघन करने की मुझ में शक्ति नहीं है, इसकारण अब मैं ऋष्यशृङ्गपुर और द्वारकापुरी में निवास करने के लिये जाती हूँ,आज्ञा दीजिये?

शङ्कराचार्य-हे देवि ! जो जो मेरे शिष्य इस सत्य अद्वैतमार्ग को चलावेंगे वह सब बहुत सावधानी के साथ तेरी सेवा और आराधना करेंगे तथा तुझको बहुत ही सन्मान देंगे।

सरस्वती-अब मैं अन्तर्धान होती हूँ (ऐसा कहकर योगशक्ति से तहाँही अदृश्य होगई)।

मण्डनमिश्र-(शङ्कराचार्यजी के चरणों में मस्तक रखकर) हे सद्गुरो ! अब मुझको संन्यास देकर पवित्र कीजिये ।

शंकराचार्य-(प्रसन्न होकर) हाँ ठीक है ! अब यही करना चाहिये (चिदाभासजी की ओर को फिरकर) चिदाभास ! तुम मण्डनमिश्र को लेकर चलो, इन का

मुण्डन आदि सब विधि करना तबतक मैं भी आता हूँ।

चिदाभास–जो आज्ञा महाराज की (ऐसा कहकर मण्डन मिश्र के साथ जाते हैं)

शंकराचार्य–(पद्मपाद की ओर को देखकर) पद्मपाद! एक तो बड़ा भारी कार्य होगया, क्योंकि–सकल कर्मकाण्ड के सार्वभौम मंडनमिश्र को जीत कर शिष्य कर ही लिया अब मेरी इच्छा है कि दिग्विजय के लिये चलें।

पद्मपाद–महाराज! इस में अब देर भी क्या है? मण्डन मिश्र को शिष्य करके साथ ले चलिये बस होगया।

शंकराचार्य–इतने ही से काम नहीं चलेगा, राजा सुध-न्वा की सहायता बिना पूरा २ दिग्विजय नहीं होसकता, क्योंकि–कोई २ पुरुष ऐसे हठी होते हैं कि–परास्त होजाने पर भी अपनी ही अलापे जाते हैं, यदि राजा सुधन्वा साथ होगा तो वह लोग राजदण्ड के भय से उद्दण्डपना नहीं कर सकेंगे, इसकारण तुम राजा सुधन्वा के पास जाओ और उसको मेरी ओर से सूचित करो कि–वह सेना सहित हमारे साथ चले, तब तक मैं यहाँ ही हूँ, जहाँ तक हो शीघ्र ही इस कार्य से निबटकर आना।

पद्मपाद–जो आज्ञा (ऐसा कहकर जाते हैं)

शंकराचार्य–(और शिष्यों से) चलो अब मण्डनमिश्र को संन्यास दीक्षा देने के लिये चलें (ऐसा कहकर नारा-यण कहते हुए सब जाते हैं)

अष्टम दृश्य।

(करेल देश-शंकराचार्य जी का जन्मस्थान)

[आसन्नमरण शय्या पर लेटीहुई शंकराचार्य जी की माता विशिष्टा का प्रवेश]

विशिष्टा-(लेटी हुई बड़ी दुःखित होकर) परमेश्वर! दीनदयालो! जिस से अपना शरीर तक नहीं सम्हाला जाता ऐसी मुझसी अनाथ अबला को जीवित रखना आप का बड़ा अन्याय है, भगवन्! सब जगत् में के अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करने के लिये ज्ञान का सूर्यरूप पुत्र मैंने पाया, तिसपर भी अन्तकाल में कोई मेरे मुखमें पानी डालने वाला तक नहीं! आहा रे पुत्र! तेरे गुणों का मैं कहाँ तक बखान करूँ? यह मेरे ही दुर्भाग्य की बात है जो अधिक दिनों मुझको तेरा संग न मिला, न जाने अब इस समय तू कहाँ होगा?, मेरा अन्तकाल समीप आगया बेटा! अब मेरी यही इच्छा है कि-एकवार तेरे चन्द्रमुख को देखकर प्राणों को छोड़ दूँ, मुझको और दूसरी कुछ चाहना नहीं है।

(इतने ही में योगमार्ग से शंकराचार्य जी प्रवेश करते हैं)

शंकराचार्य-(माता की शय्या के पास जाकर दुःख से) अरे रे! जिस ने नौ महीने तक इस शरीर के बोझे को उदर में रखकर तथा आगे को और भी अनेकों दुःख झेलकर इस का पालन किया था वह मेरी माता यही अकेली इस कंबल पर पड़ी है क्या? (फिर माता से) मैया! यह तेरा पुत्र संन्यासी शंकर आया है, एकवार नेत्र खोलकर इसकी ओर को देख।

विशिष्टा-(नेत्र खोलकर देखती हुई) बेटा शङ्कर! कब का आया है? बेटा! आनन्द तो है?

शंकराचार्य-मैया! जिस का कभी नाश हो ही नहीं स-

कता उसका सदा कुशल ही है। परन्तु मातः! तेरी यह दशा होरही है। और तेरे पास हमारे भाई बन्धुओं में से कोई भी नहीं इसका क्या कारण है?

विशिष्टा--बेटा! जिस को पेटके पुत्र ने ही छोडदिया, उस को फिर भाई बँधुओं से भी कौन बूझता है? वह केवल एक बार पूर्वपुरुषों की सब सम्पत्ति लेने को आये थे, उस के अनन्तर किसी ने आकर मुखभी नहीं दिखाया, कुछ बात नहीं है बेटा! जब अपने प्रारब्ध में ही दुःखभोग लिखा है तो दूसरों को उसका दोष देनें से कौन फल है?

शंकराचार्य--मैया! मैं तो सब धन सम्पत्ति उनको सौंप कर तेरी रक्षा का पूर्ण ध्यान रखने को कहगया था, तिसपर भी तेरे साथ उन्होंने ऐसा व्यवहार किया?

विशिष्टा--बेटा! अब वह भाड में जायँ, उस बात का इस समय में स्मरण करना भी नहीं चाहती, परन्तु अब अन्त में तुझ से इतना कहना है कि--बेटा! जैसे तू सब जगत् का उद्धार करता है तैसे इस अपनी माता को भी सांसारिक चक्र से छुटाने की कृपाकर, बस मैंने सब कुछ पालिया।

शंकराचार्य--बहुत अच्छा, मातः! अब तू नेत्र मूँद, तो तुझको गणोंसहित विमान दीखेगा और वह गण तुझको विमान में बैठाकर लेजायँगे, अब तू अपने मन में से सब वासनाओं को दूर करके एक शिवजी का ध्यान कर, क्योंकि यह तेरा अन्तकाल है।

विशिष्टा--(नेत्र मूँदती है और उसको विमान दीखता है उसी समय घबड़ा कर फिर आँखें खोलती हुई) बेटा शङ्कर! उस विमान में जाते हुए मुझको बडा भय लगता है, क्योंकि उस में तो सब गण पिशाच ही है, मुझे तू वैकुण्ठ पहुँचा, क्यों

के--भगवान् नारायण मुझको बड़े प्रिय लगते हैं।

शंकराचार्य--(कुछ हँसकर) अच्छा मातः! फिर नेत्र मूँद ले अब तुझको विष्णुभगवान् के गणों से युक्त विमान दीखेगा।

विशिष्टा--फिर नेत्र मूँदती है और विष्णुभगवान् के यहाँ का विमान दीखता है उस समय बड़ी आनन्दित होकर) आहा हा! मैं धन्य हूँ! इस विमान का क्या वर्णन करूँ? इस पर जो विष्णुभगवान् के गण हैं, वह सब चार भुजा वाले, पीताम्बरधारी हाथों में शंख चक्र-गदा-पद्म लिये, मस्तक पर किरीट और गले में वैजयन्ती माला पहिरे हुए हैं, तो क्या अब मैं इसी विमान पर बैठकर जाऊँगी? बेटा शङ्कर! ले मैं जाती हूँ, मेरे ऊपर पूर्ण कृपा रखना, पुत्र! तू परम विरक्त संन्यासी होते हुए भी इस अनाथ माता पर कृपा करनेको आया और मुझे वैकुण्ठलोक को भेजदिया, इस का मैं बडा उपकार मानती हूँ, अच्छा तो मैं अब चली--राम-राम राम--

(प्राण छोडती है) ।

शङ्कराचार्य--(नेत्रों में जल लाकर) अरे! मैं इतना विरक्त हूँ, दीखनेवाले सब संसार के पसारे को नाशवान समझता हूँ इसके सिवाय मैं इतने दिनों से इसकी ममतारूप फांसी से भी अलग था, तब भी इस माता के वियोग से मेरी छाती दहली जाती है, फिर संसार में मग्न रहनेवाले पुरुषों को न जाने ऐसे अवसर कैसा कष्ट होता होगा? अच्छा अब मैं कुटुम्बियों से इसकी प्रेतक्रिया के लिये कहूँ (ऐसा कहकर परदे की ओर को मुख करके ऊंचे स्वरसे पुकारतेहुए) हे कुटुम्बियो! यह शिवगुरु महाराज की स्त्री परम पतिव्रता श्रीमती विशिष्टा का मरण होगया है, अब इस की प्रेत क्रिया करनके लिये तुम शीघ्र आओ।

[तदनन्तर परदे में से शब्द आया कि—अरे दुष्ट अधम ! तूने हमारे कुलमें उत्पन्न हो दोनो लोक के विरुद्ध मतका स्वीकार करके इस विशुद्ध वंशको कलंक लगाया है, इसकारण तुझको उत्पन्न करनेवाली यह स्त्री बड़ी पापिन है इस लिये इस की अन्तक्रिया करने के लिये हम कोई नहीं आवेंगे तेरे चित्तमें आवे सो कर]

शङ्कराचार्य—(सुनकर क्रोध से) अरे भाई ! यदि कोई अनाथ मरजाता है तो उसकी प्रेतक्रिया करने का भार सब केही ऊपर होता है और यह तो तुम्हारे गोत्रकी है फिर इसके विषय में ऐसा उत्तर क्यों?और तुम को ऐसा द्वेष है तो मुझे अग्नि तो ला दो, यद्यपि मुझको अधिकार नहीं है, क्योंकि मैं संन्यासी हूँ, तथापि अगत्या मैं अपनी माता के प्रेतकी दाहक्रिया करूँगा ।

[फिर परदेके भीतर से शब्द आया कि—अरे नीच ! ऐसी अपवित्र स्त्री का दाह करने के लिये हम अपनी अग्नि कभी नहीं देंगे, यदि तेरी इच्छा हो तो किसी शूद्र के यहाँ से अग्नि लाकर दाह करदे ।]

शङ्कराचार्य—(सुनकर) हर ! हर ! ! परमेश्वर ! ! ! क्या यह भी मनुष्य हैं (फिर परदे की ओर को मुख करके) अरे ! तुम्हारे ब्राह्मणपन पर कुदशा आगई है उस में तुम क्या करोगे? अपने आपमें ही) अब माता का मृतक शरीर आँगन में लाकर और घर में के काष्ठों की चिता बनाकर उसपर धरेदेता हूँ और इसकी ही दाहिनी भुजाको मथकर अग्नि उत्पन्न कर घरके भीतर ही दाह करेदेता हूँ (ऐसा-कहकर माता के शरीर को भीतर लेजाते हैं और फिर बाहर आकर बड़े स्वर से) अरे बान्धवों ! अब मेरा कहना सुनो— आज से तुम्हारा स्मशान तुम्हारे घरों में ही होगा और तुम

सब वेद से पतित होकर शूद्रकी समान आचरण करोगे तथा तुमको संस्कृत अग्नि कभी नहीं मिलेगा, सार यह है कि-यहां के रहनेवाले तुम सब ब्राह्मण इस पातक के कारण, आज से ब्राह्मणपने से हीन होजाओगे, मैं तुमको यह शाप देता हूँ (फिर अपने आप से ही) अब यहां रहकर क्या करना है? अपने कार्य के लिये जाऊं (ऐसा कहकर जाते हैं)।

—※—

नवम दृश्य।

(काशीपुरी की श्मशान भूमि)

'तदनन्तर तुण्डी नामक शिवजी का गण आता है'

तुण्डी--(अपने आप ही) मुझको पार्वती माता की आज्ञा है कि-मृत्युलोक में जिस जिस प्रकार श्रीशंकराचार्यजी का चरित्र हो वह सब कैलास में आकर निवेदन कर, उस आज्ञा को मस्तक पर धर यहाँ आकर मुझको जितना मालूम हुआ वह तो मैंनें जाकर निवेदन कर ही दिया और आगे का वृत्तान्त जानने के लिये मैंने अपने मित्र भृङ्गी को भेजा था, तथा उसका और मेरा इस काशीपुरी के मरघट में मिलने का संकेत हुआ था, सो मैं तो यहाँ आगया परन्तु मेरा मित्र न जाने अभीतक क्यों नहीं आया?

'इतने ही में भृंगी नामक शिवजी का गण आता है'

भृंगी -(इधर उधर को घूमते हुए तुण्डी को देखकर) अरे! यह मेरा परम मित्र तुंडी संकेत के अनुसार यहाँ आगया अच्छा अब इस से बात चीत करूं, (पास जाकर) मित्र तुंडी! नमो नमः।

तुण्डी-(उसको देखकर प्रसन्न होताहुआ) नमो नमः, क्यों मित्र! भृंगी सब कुशल तो है?

भृंगी--सखे! परमदयालु भगवान् के चरित रूपी अमृत को पीते हुए अमंगल हो ही कैसे सकता है? क्या कहूँ मित्र! उन सद्गुरु की लीला को देखते हुए वर्षों भी क्षणभर की समान प्रतीत होते हैं।

तुण्डी--अच्छा मित्र! इधर का समाचार तो सुनाओ, जिससे कि--अब माता पार्वती जी के पास जाकर सुनाने में सुभीता रहे।

भृंगी--पहिले यह तो बताओ कि--तुम पार्वती जी को कहाँतक का समाचार सुनाचुके हो? तबमें आगे के चरित्रको वर्णन करने का प्रारम्भ करूँ।

तुण्डी--श्रीशङ्कराचार्यजी ने चित्तमें दिग्विजय करने का निश्चय करके राजा सुधन्वा को बुलवाभेजा, यहाँतक का तो सब समाचार मैं माता पार्वतीजी को सुनाचुका हूँ, इससे आगे जो कुछ हुआ हो वही सुनाओ, तो ठीक होगा।

भृंगी--अच्छा तो सुनो--श्रीशङ्कराचार्यजी अपनी माता को वैकुण्ठ पठाकर, मण्डनमिश्र आदि सब शिष्यों के हाथ सेना सहित राजा सुधन्वा को संगलिये बडे ठाठ के साथ दिग्विजय करने को निकले और पहिले श्रीरामेश्वर को जातेहुए मार्ग में कुछ घोर शाक्त मिले उनके मतकी दूषित बातोंका खण्डन करके रामनाथजी में पहुंचे, तहां से चौल-द्रविड-पाण्ड्य आदि देशों में असन्मतों को परास्त कर-तेहुए कांचीपुरी में गये और तहां के सब पण्डितों का गर्व नष्ट करके वैकुण्ठाचलपर गये और तहां के पुरुषों को भी अपने वश में करतेहुए कर्णाटक देशमें जापहुंचे॥

तुण्डी--फिर क्या हुआ?

भृंगी--तहां भैरव की दीक्षा धारनेवाला एक क्रकच नामक

घोर कापालिक अपने साथियों के बड़े भारी समूह के साथ रहता था, वह श्रीशङ्कराचार्यजी के सन्मुख आकर दुर्वचन कहनेलगा, तब तो राजा सुधन्वा को कोप आगया, और उसने तिस दुष्ट को सभा में से निकलवादिया, वह धूर्त्त इस प्रकार अपमान होते ही अपने साथ के सब कापालिकों को लाकर युद्ध करने को उद्यत हुआ

तुण्डी-(चकित होकर) आहो ! उस दुष्ट ने ऐसा साहस किया ? अच्छा तो फिर ?

भृंगी-तदनन्तर सुधन्वा की सेना के साथ उस कापालिक का युद्ध होने पर, कुछ कापालिकों ने श्रीशङ्कराचार्यजीके धर्म मठ में आनन्द के साथ भोजन करके भगवद्भजन में समय को बिताने वाले ब्राह्मणों पर चाल खेल उन में से अनेकों को यमपुरी पहुँचा दिया उस समय की दशा क्या कहूँ ! जिधर तिधर हाहाकार होने लगा, सब ब्राह्मण नंगे उघाड़े रोते हुए श्रीशङ्कराचार्यजी के पास आकर जीवदान माँगने लगे।

तुण्डी-आहो ! उन चाण्डालों ने तो बड़ा ही अनर्थ किया हा !, अच्छा फिर ?

भृंगी-फिर उन कृपासिंधु के चित्त पर पहिले तो कृपाकी लहर आई और पीछे उन दुष्टों के आचरण से अत्यन्त दुःखित होकर, महाराज अपने आप युद्ध भूमि में आये और एक हुंकार शब्द में ही सब कापालिकों को भस्म कर डाला, उस समय केवल वह अकेला ककच ही बाकी रहगया, तब अपनी मंत्रशक्ति से श्रीभैरवदेव को प्रकट करके उनसे-श्रीशङ्कराचार्य जी का नाश करने के लिये प्रार्थना की।

तुण्डी-(घबड़ाकर) फिर क्या हुआ ? महाराज उस संकट से छूटे या नहीं ?

भृंगी-मित्र ! घबड़ाओ मत, वह भैरवदेव श्रीशङ्कराचार्य जी की ओर को देखकर हँसे और फिर उस दुष्ट क्रकच की ओर को प्रलयकाल की अग्नि की समान लपटें छोड़ने वाली दृष्टि से देखकर कहा कि-अरे मदान्ध ! क्या मेरे ही अवतार भगवान् शङ्कराचार्य का नाश करने के लिये कहता है ? अच्छा तो अब मैं तुझ को ही यहाँ से कपूर किये देता हूँ, ऐसा कहकर उन उग्र भैरवदेव ने जैसे मतवाला हाथी अपनी सूँड से कमलके फूल को सहज में ही तोड़ लेता है तैसे ही उस नीच कापालिक के मस्तक रूप कमलको धड़से अलग करदिया, और भगवान् शङ्कराचार्यजी की जय बोलते हुए वह भैरवदेव अन्तर्धान होगये ।

तुण्डी-(प्रसन्न होकर) मित्र ! अब मेरे होश ठिकाने आये, अच्छा फिर क्या हुआ ?

भृंगी-फिर भगवान् शङ्कराचार्य जी पश्चिम के समुद्र की ओर को फिर कर गोकर्ण क्षेत्र में आये, तहाँ पण्डित नीलकण्ठ के साथ शास्त्रार्थ करके उन को जीतकर द्वारकापुरी को चलेगये,तहाँ कितने ही पाखण्डी वैष्णव थे उन को अपने वश में करके अवन्ती नगरी में आपहुँचे, तहाँ पण्डित भास्कर के साथ बड़ा भारी शास्त्रार्थ करके उनको भी अपने चरणों में नमाकर छोड़ दिया, फिर एक अभिनव गुप्त नाम वाले बड़े भारी मंत्रशास्त्री आये उनके गर्व का भी चूरा करके, उत्तर दिशा में दिग्विजय करने को गये ।

तुण्डी-अच्छा फिर क्या हुआ ?

भृंगी-फिर कोशल देश, अंगदेश आदि के असत् मतों को जीतकर गौड़देश में आये, तहाँ मीमांसाशास्त्र के पारगामी पण्डित मुरारिमिश्र को जीता ।

तुण्डी—मित्र! तुम धन्य हो, उन परम मंगलमूर्त्ति के दिग्विजय चरित्र को देखकर पवित्र होगये हो, अच्छा फिर क्या हुआ?

भृंगी—फिर शङ्कराचार्यजी ने अपने साथियों के सहित उत्तर दिशा में जाकर जिन अभिनवगुप्त को परास्त किया था उन्हों ने अपनी मंत्रशक्ति से शङ्कराचार्यजी पर एक कृत्या (मारणकी विधि) की उसके कारण महाराज के शरीर में बड़ा दुःखदायक भगंदर नामक रोग उत्पन्न होगया।

तुण्डी—(घबड़ाकर) मित्र! यह एक और नया संकट आया, अच्छा फिर?

भृंगी—फिर यद्यपि महाराज तो यही कहते रहे कि—औषधि आदि की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि—यह शरीर रोग का ही स्थान है, तथापि सब शिष्यों ने और राजा सुधन्वा ने अनेकों वैद्यों को बुलवाकर चिकित्सा करवाई, परन्तु रोग का निदान किसी से भी न होसका, अन्त में पद्मपादजी ने अश्विनीकुमारों का आवाहन करके उनको मूर्त्तिमान् बुलाया, वह रोग की परीक्षा करके, यह रोग कृत्या से उत्पन्न हुआ है ऐसा कहकर अन्तर्धान होगये।

तुण्डी—फिर क्या हुआ, यह तो बता, महाराजका उस रोग से छुटकारा हुआ या नहीं?

भृंगी—तब तो पद्मपादजी को क्रोध आगया और उन्हों ने अपने मंत्रबल से उस कृत्या को शान्त किया तब महाराज नीरोग हुए और उसी कृत्या के द्वारा उस दुष्ट अभिनवगुप्त का प्राणान्त होगया।

तुण्डी—(प्रसन्न होकर) रोग शान्त होने पर फिर क्या हुआ?

भृंगी—फिर एक दिन महाराज गंगाजी के तटपर बैठे अपने शिष्यों को उपनिषद् विद्या का उपदेश देरहे थे इतने ही

में उन के परमगुरु भगवान गौड़पादाचार्य आगये और शंकराचार्यजी के शारीरकभाष्य आदि सब ग्रंथों को देखकर परम प्रसन्न होते हुए चलेगये, फिर काश्मीर में सरस्वती का विद्याभद्रासन नामक पीठ है, जो उस के ऊपर बैठ सकेगा उसी का दिग्विजय पूरा समझा जायगा, तथा तहाँ बड़े २ धुरंधर पंडित भी हैं, इस बात को जहाँ तहाँ सुनकर भगवान् शंकराचार्यजी अपने शिष्यों सहित काश्मीर को चले गये

तुण्डी-फिर क्या हुआ ?

भृंगी—उस काश्मीर के दक्षिण द्वार पर भगवान् शंकराचार्यजी पालकी में बैठे हुए बड़ी धूमधाम से पहुँचे, काणाद, नैयायिक, सौगत, दैगम्बर, कर्मकाण्डी आदि अनेकों वादियों ने आकर श्रीशङ्कराचार्यजी से प्रश्न किये उस समय उन सब प्रश्नोंका उचित उत्तर भगवान् शंकराचार्यजी के देते ही, यह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् साक्षात् ईश्वर ही हैं, इस बातका उन सब को निश्चय होगया और उन काश्मीरके निवासियों ने भगवान् शंकराचार्यजी का सत्यमत स्वीकार कर लिया तथा बड़े उत्साह के साथ महाराज को लेजाकर विद्याभद्रासन पीठपर बैठाने को ठहरा, शंकराचार्यजी के सन्मान के लिये दिन में ही मसालें जलाकर और महाराज की पालकी को छत्र चँवर आदि से शोभायमान करके अनेकों बाजों का शब्द करते हुए लेचले, यहां तक का चरित्र देखकर मैं आरहा हूँ अभी महाराज की सवारी विद्याभद्रासन पर बैठाने के लिये बड़ी धूम से जारही है।

तुण्डी—मित्र ! तो मैं यह समाचार माता पार्वतीजी को सुनाने के लिये कैलाश पर जाता हूँ और तू भी अब आगेका चरित्र देखने के लिये जा।

ऐसा कहकर दोनो जाते हैं।

दशम दृश्य।

काश्मीर।

[तदनन्तर परदे में अनेकों प्रकार के बाजे बजते हैं और वैतालिक (नकीब) का शब्द होता है–श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य–पदवाक्यप्रमाण पारावारापारीण–यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणास-माध्यष्टांगयोगानुष्ठाननिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्रा-प्तषड्दर्शनसंस्थापनाचार्य–व्याख्यानसिंहासनाधीश्वर–सकल-निगमागमसारहृदय–सांख्यत्रयप्रतिपादक– वैदिक-मार्गप्रवर्तक–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–नास्तिकद्वैतध्वांतक-दम्भज्ञानमार्तण्ड–बोधाब्जविभाकर–श्रीराजाधि-राज–विद्याशंकराचार्य–श्रीजगद्गुरुमहाराज]

(तदनन्तर पालकी में बैठेहुए श्रीशंकराचार्यजी, आगेर विरुदावली पढनेवाला नकीब पालकी के साथ चलनेवाले शंकराचार्यजी के सब शिष्य, चतुरंगिनी सेना सहित हाथ में श्रीशंकराचार्यजी की चरणपादुका लिये राजा सुधन्वा और नगर के सब पंडित आते हैं)

नकीब–(फिर पहिले की समान श्रीमत्परमहंस इत्यादि पढ़ता है) ॥

राजा सुधन्वा–(पालकी के पास जाकर) जगद्गुरु महाराज! सरस्वती का विद्याभद्रासन आगया, वह मंदिर यही है, अब पालकी में से उतरिये ॥

[तदनन्तर नगर के पण्डित पालकी को नीचे रखतेहैं और महाराज पद्मपाद जी का हाथ पकडकर बाहर आते है, इतने ही में राजा सुधन्वा चरण-पादुका आगे रखता है, उनको पहरकर महाराज चलने लगते हैं उस समय अनेकों बाजे बजते हैं और नकीब फिर वही विरुदावली पढ़ता है] ॥

शंकराचार्य–(विद्याभद्रासन के पास जाकर) पद्मपाद-जी जिस पीठपर बैठने पर ही दिग्विजय पूर्ण समझा जाता है यह वही विद्याभद्रासन पीठ है क्या?

पद्मपाद-श्रीमहाराज ! हां यही है वह पीठ, अब आप इस पर विराजें ।

शंकराचार्य-बहुत अच्छा (ऐसा कहकर पद्मपादजी के हाथ का अवलम्बन किये हुए ऊपर को चढ़ते हैं, उसी समय आकाश में सरस्वती का शब्द होता है ॥

हे शंकराचार्य ? जो सर्वज्ञ और परमपवित्र होगा वही इस सिंहासन पर
बैठ सक्ता है, अब तुमको सर्वज्ञ कहने में तो कोई सन्देह नहीं है
क्योंकि ब्रह्मदेव के अवतार मण्डनमिश्र भी तुम्हारे शिष्य
होगए, परन्तु अभी तुम परमशुचि नहीं हो, क्यों कि
तुमने संन्यासी होकर राजा अमरुक की स्त्रियों
के साथ विलास किया है, इस-
कारण तुम इसपर बैठने के
योग्य नहीं हो ॥

शंकराचार्य-(सुनकर कोपसे) तेरे घमण्ड को मैंने एक बार छोड़ दिया, अब फिर भी तू इस समय मेरे सिंहासन पर बैठने में विघ्न डालती है ? अच्छा तुझको इसका भी उत्तर देता हूँ, सुन-हे वाग्देवते ! मैं जिस शरीर से इस सिंहासन पर बैठता हूँ यह मेरा शरीर पवित्र ही है और जिस शरीर से मैंने अमरुक राजा की रानियों से विलास किया था वह देह तो चिता में भस्म होगया, पवित्रता और अपवित्रता का आत्मा के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं होता है केवल शरीर के ही साथ होता है, देखो-जो पुरुष एक जन्म में चाण्डाल जातिका होता है वही किन्हीं पुण्यों के प्रताप से दूसरे जन्म में ब्राह्मण होजाता है, तो क्या वह पहिले जन्म में चाण्डाल था इसकारण उसको दूसरे ब्राह्मण के जन्म में भी वेदाधिकार नहीं होगा ? इसकारण मैं जिस शरीर से इस समय इस विद्या पीठपर चढ़ता हूँ मेरा यह शरीर परम पवित्र

है फिर विघ्न क्यों किया जाता है? यदि ऐसा होने पर भी तुझको और कुछ कहना हो तो वह भी कथन कर।

(इस पर सरस्वती निरुत्तर होती है और श्रीशंकराचार्य जी विद्या पीठ पर चढ़कर बैठते हैं, उसी समय बाजों का घनघोर शब्द होता है और आचार्य के ऊपर पुष्पों की वर्षा होती है तथा काश्मीर के सब पण्डित आकर श्री शंकराचार्यजी का पूजन करते हैं)

राजा सुधन्वा—(आगे बढ़कर ऊपर को हाथ उठा ऊँचे स्वर से) सबलोग मेरे कथन को सुनें—हे सभासदों! जिन देवाधिदेवने प्रथम भट्टपादजी के द्वारा जैनों का पराजय करवाकर उनको निर्बीज करवाया और जिन्हो ने अपनी इच्छा के बलसे इस भूमण्डल पर मण्डनमिश्र आदि पण्डितों से कर्ममार्ग की प्रवृत्ति करवाई, फिर जिन्होने शिवगुरु महाराजकी पतिव्रता स्त्री विशिष्टा के गर्भ से जन्म धारकर अनेकों चमत्कार किये तथा जिन्हो ने माया का नाका रचकर माता से संन्यास धारण करने की आज्ञा ली, तदनन्तर जिन्होने श्रीगोविन्दपूज्यपादा—चार्य से संन्यास लेकर काशीपुरी में साक्षात् विश्वनाथ भगवान् से दर्शन—भाषण किया, इसी प्रकार जिन्होने मण्डनमिश्र से अगाध शास्त्रार्थ करके सरस्वती को जीतने के लिये राजा अमरक की काया में प्रवेश किया और फिर जिन्होने सब दिशाओं के पण्डितों को जीतकर अपने वशमें करलिया, वही यह भगवान् कैलाशपति इस समय इस विद्याभद्रासन पर बैठे हुए, तारा गणों के मध्य में शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की समान शोभायमान हैं (ऐसा कहकर सिंहासन के सामने साष्टांग प्रणाम करता है)।

शंकराचार्य—(ऊँचे स्वरसे नारायण शब्द का उच्चारण करके)

शिष्यों ! आज मेरे अवतार का सब कार्य समाप्त होगया, अब तुम सब को मेरी आज्ञा है कि—चारों दिशाओं में मेरे चार मठ होंगे, उन में रहते हुए तुम शिष्य प्रशिष्यों के द्वारा मेरे इस अद्वैत मार्गको फैलाकर सब अधिकारियों में वैदिकमार्ग का प्रचार करो और जो दुराचार में प्रवृत्त हों उनको दण्ड देकर, सन्मार्ग का प्रचार करने वालों पर अनुग्रह करो और यद्यपि संन्यासियों को राजसी ऐश्वर्य निषिद्ध है तथापि सबों पर प्रताप बैठाने के लिये तुम राजाओं की समान ठाठ रक्खो परन्तु उस राजसी ठाठ से आनन्द न मानकर केवल आत्मानन्द में ही निमग्न रहते हुए जगत् का उद्धार करो, अब मेरी आयु भी थोडी ही शेष रही है, इसकारण अब मैं हिमालय पर जाकर तहाँ से अपने कैलाशधाम को चला जाना चाहता हूँ (सुधन्वा को समीप बुलाकर) राजन् ! तुम ने इस कार्य में सहायता की, इसकारण तुम्हारा भी उद्धार होगा, अब मेरी आज्ञाके अनुसार तुम को इन मेरे शिष्यों की भी सहायता करना चाहिये।

राजा सुधन्वा—(फिर नमस्कार करके) महाराज आपने कृपा करके मेरी सेवा को स्वीकार किया,इस को मैं क्या कर सकता था, जो कुछ कार्य मेरे द्वारा हुआ वह सब आप की ही शक्ति से हुआ, अब मैं श्रीमान् की आज्ञानुसार चारों दिशाओं में मठ स्थापित करवाकर अद्वैत सम्प्रदाय के अव्याहत चलने का उद्योग करता रहूँगा।

शंकराचार्य—अच्छा, सब काम तो ठीक हो ही गया अब तुम सब अपना २ कार्य सिद्ध करने के लिये जाओ और आज से इस मेरे ऐश्वर्य को पद्मपादाचार्य भोगें (ऐसा होने पर सब लोग प्रणाम कर २ के जाते हैं और तदनन्तर शंकराचार्य जी भी हिमालय को जाते हैं) ।

एकादश दृश्य।

(हिमालय)

तदनन्तर नारायण नारायण शब्द करते हुए श्रीशङ्कराचार्यजी का प्रवेश

शङ्कराचार्य-(अपने आपही) मैंने विष्णुभगवान् और ब्रह्मदेव आदि देवताओं से जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार सब अवतार चरित्र को तो पूरा करही चुका, अब मुझको कोई कार्य करना शेष नहीं रहा, इस मृत्युलोक में विधाता की कैसी सुन्दर रचना है! उनके इस अनन्त रहस्य का वर्णन कौन कर सकता है, इन चर्मचक्षुओं से मैंने चारों दिशाओं में अनेकों नगर देखे, परन्तु यह हिमालय का दृश्य सब ही स्थानों से निराला है चारों ओर की भूमि बरफ से ढकी हुई है, सूर्य का प्रकाश क्षीण होने से यह पता ही नहीं लगता कि-इस समय दिनका मध्यान्ह है या सायंकाल होने को है। हाँ! आज तो मेरी आयुका अन्तिम दिन है, भगवान् व्यासजी की आज्ञानुसार आज मेरे बत्तीस वर्ष पूरे होगये, अब इस मृत्युलोक में वृथा ठहरना ठीक नहीं है इस कारण इस पवित्र तीर्थ केदारनाथ की गुफामें जाकर निज धाम को जाता हूँ (इतना कहकर नारायण शब्दकी ध्वनि करते हुए गुफा में प्रवेश करते हैं, और गुफा के भीतर से-

ॐ मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं, नश्रोत्रंनजिह्वानचघ्राणनेत्रे।
नचव्योमभूमीनतेजोनवायुश्चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोहम् १॥
अहं प्राणसंज्ञोनपंचानिलामे, नतोयं नमे धातवो नैव कोशाः॥
नवाक्पाणिपादौनचोपस्थपायू, चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोहम्
नपुण्यंनपापंनसौख्यंनदुःखं, न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः॥
अहं भोजनं नैव भोज्यंन भोक्ता, चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोहम्
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ, मदो नैव मे नैव मात्सर्यमानम्॥

न धर्मो नचार्थो नकामोन मोक्षः,चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोऽहं
न मे मृत्युशंका नमे जातिभेदः,पिता नैव मे नैव माता न जन्म ॥
न बन्धुर्नमित्रं गुरुर्नैवशिष्यः—चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं
अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो,विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि ।
सदामेसमत्वंनमुक्तिर्नबन्धः चिदानन्दरूपःशिवोऽहंशिवोहम्॥

ॐ तत्सत्— ॐ तत्सत्— ॐ तत्सत्—सत्यमद्वैतम्—सत्यमद्वैतम्—सत्यमद्वैतम् । ऐसी ध्वनि सुनाई देकर आकाश में गुंजारती हुई धीरे धीरे लीन होती है ॥

(तदनन्तर ब्रह्माजी और इन्द्र आदि देवता आते हैं॥)

इन्द्र—हे पितामह ब्रह्माजी ! श्रीशंकर के अवतार का कार्य समाप्त होगया इसकारण हम सब उनको परम सन्मान के साथ शिवलोक में लिवा जाने के लिये आये हैं और वह भगवान् शंकर हिमालय की इस गुफा में हैं यह बात हमने दिव्य-दृष्टि से जानली है, सो अब आपही आगे बढ़कर उन से निवेदन करिये ॥

ब्रह्माजी—(गुफा के मुखपर जाकर हाथ जोड़हुए) हे देवाधिदेव ! जगन्निवास ! पार्वतीपते ! आपने सब देवताओं को और सब लोकों को सुख देने के लिये मनुष्यरूप धार कर हमारी इच्छा को पूरा करते हुए सत्य सनातन धर्म का प्रचार किया, पृथ्वी के भार को घटाया,जीवन्मुक्तिके मार्ग का प्रकाश और असद्धर्मों का नाश किया, जिससे कि वेद-वेदान्तादि का उद्धार, तुम्हारे निज कर्तव्य का पालन और धर्मराज्य में सर्वत्र आपकी विजय हुई इस प्रकार अब आप-को कुछ कार्य शेष नहीं रहा अतः अब निजधाम को पधारिये । भगवन् ! आज वैशाख शुक्ल पूर्णिमा है और यही दिन आपका लौटकर कैलाश को जाने का नियत हुआ था।

शंकराचार्य-(गुहा के भीतर से ही) हे ब्रह्मादि देवताओं! आज मेरे इस अवतार की अवधि का अन्तिम दिन है यह जानकर ही मैं इस गुफा में आया हूं, अब कैलास को जाने के लिये मैं अपनी अचिन्त्य शक्तिमय समाधि के द्वारा इस शरीर को ही अपने मूल स्वरूप में मिलाकर आता हूं, क्योंकि-मैं अपने इस शरीर को मृत्यु लोक में छोड़ना नहीं चाहता।

ब्रह्माजी-जो इच्छा महाराज! आप तो सदाशिव ही हैं, माया के द्वारा मनुष्यरूप दीखते हो, इसकारण अपने मूलरूप को धारकर अब बाहर आइये, यह सब देवता आप के दर्शन के लिये अकुला रहे हैं।

इतने ही में श्रीशंकराचार्य जी दिव्य शिवरूप में आते हैं उसी समय स्वर्ग में दुन्दुभि बजते हैं और फूलों की वर्षा होती है तदनन्तर सब देवता उन को प्रणाम करते हैं।

शंकर-(मुसकुराते हुए) क्यों देवताओं! तुम्हारी सब चिन्ता दूर होगई?

इन्द्र-कैलाशनाथ! जब आपने हमारे लिये इतना परिश्रम किया तो फिर हमारे मनोरथ पूरे हुए बिना कैसे रहसकते थे? महाराज! आपका स्थापन करा हुआ मत सब शिष्टों का माननीय होकर इस मृत्युलोक में चिरकाल तक रहेगा, ऐसा हम सब देवता मिलकर आपके मत को आशीर्वाद देते हैं।

शंकर-देवताओं! आज मैं तुम्हारे ऊपर बडा सन्तुष्ट हूँ इसकारण तुम्हारी और भी जो कुछ इच्छा हो कहो मैं उस को अवश्य ही अभी पूरा करूँगा॥

ब्रह्माजी-महाराज! आपकी इस लीला से हमारे सब मनोरथ पूरे हो ही गये परन्तु अन्त में इस मृत्युलोक को इतना आशीर्वाद और दीजिये।

यथोचित करैं मेघ वर्षा सदा ही,
लहैं मोद मन लोक धन जन को पाही।
पढ़ैं वेदविद्या द्विजाती मगन मन,
गहैं शूद्र भी सद्गती सन्मती बन।
नृपति नीति शान्ती दया चातुरी सों,
प्रजा पाल ते जय लहैं निज अरी सों।
सुनें जो चरित आपका और सुनावें,
सदा सर्व सुख-सम्पदा-ज्ञान पावें॥

शंकर-(परम प्रसन्न होकर) ब्रह्म देव! जो तुम कहते हो वही होगा, चलिये अब हम सब अपने२ लोक को चलें (तदनन्तर आगे २ शंकर और उनके पीछे २ स्तुति गाते हुए सब देवता जाते हैं और धीरे२ पर्दा गिरता है)।

त्रिलोचन गुणाधार विश्वेश नामी,
विभो भूतपति हर नमामी नमामी॥
मदन-दर्प-हारी पिनाकिन गजारी,
नमस्ते प्रभो भक्तजन मोदकारी॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

समाप्त.